॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत

वेद

(चारों वेद, वैदिक साहित्य, मुख्य वेद ऋग्वेद एवं
भारतीय अवैदिक् मत-पंथ-संप्रदायों का वैज्ञानिक विश्लेषण)
(मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के संस्कृत विभाग के तत्त्वावधान में प्रस्तुत व्याख्यान)

लेखक

साहित्यमहोपाध्याय

डॉ. भ्रमरलाल जोशी

एम्. ए. (हिन्दी-संस्कृत), पीएच्. डी., साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न, शिक्षारत्न

पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, श्रीस्वामिनारायण आर्ट्स कॉलेज
विजिटिंग प्रोफेसर, गुजरात विश्वविद्यालय हिन्दी अनुस्नातक केन्द्र, एल्. डी. आर्ट्स कॉलेज
शोध-निदेशक, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

ई. सन् २००१

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

शाकलसंहिता (ऋक्संहिता) (पदपाठ) हस्तप्रति के अंतिम पृष्ठ का चित्र

पञ्चम अष्टक को छोड़कर शेष सात अष्टकों के लिपिक हैं अन्नं भट्ट। ये षष्ठ अष्टक के अंत में लिखते हैं – शके १७३, प्लवनामसंवत्सरे पोष शुद्ध इंदुवासरे तद्दिने इदं पुस्तकं समाप्तम्। तथा अष्टम अष्टक के अंत में लिखते हैं – शके १७३ प्लवनामसंवत्सरे पौषकृष्ण अमावास्या रविवासरे तद्दिने इदं पुस्तकं समाप्तम्। पञ्चम अष्टक के लिपिक केशव भट्ट ने अष्टक के अंत में लिखा है – शके १७५४, शोभननामसंवत्सरे अश्विन शुक्ल प्रतिपदा, भोमवासरे इदं पुस्तकं समाप्तम्। केशव भट्ट की हस्तप्रति के कागज सफेद एवं मोटे हैं जब कि अन्नं भट्ट की हस्तप्रति के कागज पीले पड़ गए हैं एवं जर्जरित हैं। यद्यपि अन्नं भट्ट ने दोनों बार शके १७३ लिखा है, पर अनुमान है कि शून्य को अशुभ मान कर न लिखा हो और शके १७३० हो। केशव भट्ट ने जो शके १७५४, लिखा है इस पर से यह अनुमान सत्य के निकट होना चाहिए। फिर १३वीं ई.सन् से ही कागज में ग्रन्थ लेखन प्रारंभ हुआ है। इसके पूर्व ताड़पत्र, भोजपत्र पर ही ग्रन्थ लिखे जाते थे। मुझे यह भी लगता है कि केशव भट्ट अन्नं भट्ट का पुत्र हो या परिवार का हो। अन्नं भट्ट लिखित हस्तप्रति में पञ्चम अष्टक किसी कारण से अपठनीय या लुप्त हो गया हो, उस स्थिति में संभव है कि केशव भट्ट ने बालकृष्ण उपास्नी की हस्तप्रति से पञ्चक अष्टक की प्रतिलिपि तैयार की हो क्योंकि केशव भट्ट ने उपास्नी का अष्टक के अंत में नाम लिखा है। अष्टं अष्टक के अन्त में अन्नं भट्ट लिखते हैं –

अर्जितं भूरिकष्टेन लिखितं पुस्तकं मया। हर्तुमिच्छति यः पापी तस्य वंशः क्षयो भवेत् ॥

केशव भट्ट पञ्चम अष्टक के अन्त में लिखते हैं –

तैलाद्रक्षेत् जलाद्रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात्। मूर्खहस्ते न दातव्यं एवं वदति पुस्तकम् ॥
भग्नयष्टि कटिग्रीवा स्तब्धदृष्टिरधोमुखम्। कष्टेन लिखितं ग्रन्थं यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥

मेरे निजी पुस्तकालय में ऋक्संहिता का पञ्चम अष्टक तक हस्तलिखित संहितापाठ भी है।

शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत

वेद

(चारों वेद, वैदिक साहित्य, मुख्य वेद ऋग्वेद एवं
भारतीय अवैदिक मत-पंथ-संप्रदायों का वैज्ञानिक विश्लेषण)

(मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के संस्कृत विभाग के तत्त्वावधान में प्रस्तुत व्याख्यान)

लेखक

साहित्यमहोपाध्याय

डॉ. भ्रमरलाल जोशी

एम्. ए. (हिन्दी-संस्कृत), पीएच्. डी., साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न, शिक्षारत्न

पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, श्रीस्वामिनारायण आर्ट्स कॉलेज
विजिटिंग प्रोफेसर, गुजरात विश्वविद्यालय हिन्दी अनुस्नातक केन्द्र, एल्. डी. आर्ट्स कॉलेज
शोध-निदेशक, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

ई. सन् २००१

प्रकाशक : गुर्जर भारती,
३१, प्रशान्तपार्क,
पालडी, अहमदाबाद-३८० ००७
दूरभाष : ०७९-६६०४१५४

द्वितीय संस्करण : (परिवर्धित एवं संशोधित) सन् २००१
मूल्य : १००.००

वितरक :- पार्श्वप्रकाशन, निशा पोल, झवेरीवाड़, तिलकमार्ग,
अहमदाबाद-३८० ००१ (दूरभाष-०७९-५३५६९०९०)

मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.,
सिटी मिल कम्पाउण्ड, कांकरिया रोड़,
अहमदाबाद-३८० ०२२
दूरभाष : ०७९-५४६४९९०/९१

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

दिवंगत श्रेष्ठिवर श्री लक्ष्मीनारायणजी गाड़ोदिया (दिल्ली)

को

श्रद्धासहित

वेद-पुष्पाञ्जलि

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

सर्वं वेदात्प्रसिध्यति

॥ अग्निमीळे पुरोहितम् ॥[१]

मैंने बन्धुवर साहित्यमहोपाध्याय डॉ. भ्रमरलालजी जोशी की नवीनतम रचना 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' का गम्भीर अध्ययन किया। वस्तुतः इस ग्रन्थ में जोशीजी का ऋषिकल्प व्यक्तित्व स्वयं प्रभासित हो रहा है। निश्चय ही भारतीय संस्कृति ही नहीं, विश्वमानवता के प्रति यह उनका अनन्त उपकार है।

आज इक्कीसवीं शताब्दी में प्रविष्ट होने के साथ ही विश्वमानवता की आस्था भारतीय प्रज्ञा के प्रति जागरूक ही नहीं अपितु संवर्द्धित हो रही है और भारतीय चिन्तन का, तेज और स्फूर्ति का, जीवन की जीवन्तता का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार वेद ही हैं। यह चिन्ताजनक एवं दुःखद है कि वैदिक विज्ञान को आडम्बरों के घटाटोप में आच्छादित कर रखा है। वह तेजोमय वेदरूपी सूर्य पावस की घनी घटाओं में ऐसा छिप रहा है कि उसकी वास्तविकता पर प्रश्नचिह्न-सा लग गया है। मेघ तो सदैव चलायमान होते हैं। अतः जब और जिधर से भी सूर्य के किसी अंश की झलक मिल जाती है तो हम आनन्द विभोर हो उठते हैं। सम्पूर्ण सूर्य का प्रकाश जैसे अन्धकार को दूर करता है, वैसे ही वेद-सूर्य का प्रकाश भी समस्त अज्ञानों क़ा निवारण करता है। इसीलिए वेदमाता के नाम से प्रसिद्ध गायत्री छन्द में निबद्ध सविता-मन्त्र (ऋग्वेद ३।६२।१० ऋषि विश्वामित्र गाथिन) का प्रारम्भ ही 'तत्सवितुर्वरेण्यं...' से होता है। वस्तुतः वेद सूर्य ही धाता और विधाता है क्योंकि मनुष्यता का स्वरूपदर्शन उसकी बुद्धिमत्ता में है। यह बुद्धिमत्ता और मननशीलता ही उसे मनुष्यत्व प्रदान करती है और इनका एक मात्र आधार वेद ही हैं। इसीलिए प्राचीन विद्वानों ने वेदों को भगवान् के रूप में प्रसिद्ध किया था और वही वेदज्ञान-विज्ञान विचारशील मनुष्यों की समस्त चेतना और तर्कना का, तर्कबुद्धि का आधार है। यह संसार प्रकृति की कृति है और प्रकृति एवं कृति के लिए ऋषियों द्वारा जो संस्कृति हमें प्रदान की गई है वही वेद हैं।

वरेण्य विद्वान् डॉ. जोशी ने बड़े ही गम्भीर अध्ययन के पश्चात् पुष्ट तर्कों के आधार पर अपने सांस्कृतिक स्वरूप का परिचय देते हुए वेद-ज्ञान-विज्ञान को आच्छादित करनेवाली उन घनघटाओं (वृत्रों) को हटा दिया है जो भारतीय समाज के लिए जड़ता और मूढता का कारण बन गई थीं।

निर्वचनकारों ने 'वेदः' पद की व्युत्पत्ति विद् ज्ञाने, विद्लृ लाभे, विद् सत्तायाम् एवं विद् विचारणे इन चार अलग-अलग गणों के धातुओं से निष्पन्न की है। मुझे अपार प्रसन्नता है कि बन्धुवर डॉ. जोशी ने विचारपूर्वक अन्तःसाक्ष्य, वेदःसाक्ष्य संहितासाक्ष्य एवं प्रकरण के अनुसार ऋषियों के मन्त्रोद्देश्य को समझकर 'वेदः' पद को ऋग्वेदादि के सन्दर्भ में' विद्लृ लाभे से निष्पन्न माना है और वेदः का धन अर्थ किया है।

यद्यपि अवतारवाद सृष्टि के विकास का क्रममात्र है पर आज वह पौराणिक साहित्य एवं कर्मकाण्ड जीवन और पण्डिताभिमानियों की जीविका का साधन मात्र बनकर रह गया है। इस अवतारवाद की कल्पना में भगवान् का सबसे संक्षिप्त स्वरूप वामन स्वरूप माना गया है जो महत्तम होते हुए भी लघुतम है। निश्चय

१. ऋग्वेद १।१।१। ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र।

ही डॉ. जोशी की यह रचना वैदिक अवतारणा में वामन स्वरूप है।

एक विचारणीय प्रश्न है कि जीवन है क्या ? और जीवन क्यों है ? और कैसे है ? वास्तविकता यह है कि जीवन का अर्थ ही जीवन के लिए है। प्राणिमात्र की और विशेषकर मनुष्य की एकमात्र इच्छा है कि मैं जीवित रहूँ, जबतक चाहूँ जीवित रहूँ और जैसे चाहूँ जीवित रहूँ। बस यही शक्ति का स्वरूप है। जीवित रहने के लिए शक्ति चाहिए और जीवन के विस्तार के लिए ऐश्वर्य अनिवार्य है। डॉ. जोशी ने इसी शक्ति एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए मूलस्वरूप का दिग्दर्शन कराया है। वेदों के अध्ययन की परंपरा को विराम देकर केवल वेदान्त का प्रतिपादन करने वाले आदि शङ्कराचार्य महाराज ने भी संसार के सन्तरण के लिए जिन पांच श्लोकों का प्रणयन किया है उनका प्रारम्भ ही इस रूप में हो रहा है —

वेदोनित्यमधीयतां तदुदितं कर्मस्वनुष्ठीयताम्।
तेनेशस्य विधीयतामपचिति काम्येमतिस्त्यज्यताम्॥
पापौघः परिभूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयताम्

कितना स्पष्ट आदेश है। वेद नित्य पढ़ो और यहाँ अधीयताम् का प्रयोग किया है। अध्ययन की तीन दिशाएँ हैं – (१) अध्ययन (२) मनन (३) निदिध्यासन। अर्थात् – पढ़ो, खूब विचार करो और तदनुकूल आचरण करो। यही जीवन की सार्थकता है। इसीलिए वेद समस्त शक्ति और ऐश्वर्य के मूल स्रोत हैं, मूल आधार हैं। वस्तुतः वेदों को जीवन का स्रोत ही कहना चाहिए। इसीलिए वेदपाठी स्तोता कहलाता है और वह स्तुति करता है – **'भगं एव भगंवाँ अस्तु देवास्तेनं वयं भगंवन्तः स्याम'** (ऋग्वेद ७।४९।५। ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ) हम शारीरिक और मानसिक बल, बुद्धि एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हों इसके लिए, इस ऐश्वर्य साधना के लिए हम भग रूप, ऐश्वर्यरूप भगवान् वेद की स्तुति करते हैं क्योंकि **' भगं एव भगंवाँ अस्तु '**। भगवान् के भग स्वरूप की परिकल्पना की गई है –

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों की सिद्धि भगवान् द्वारा ही होती है इसीलिए वेद भगवान् शब्द का प्रयोग चल पड़ा। भग सूर्य को कहते हैं। सूर्य जैसे समस्त ऐश्वर्यों का आधार होने से भगवान् है वैसे ही वेद भी समस्त ऐश्वर्यों के आधार होने से भगवान् हैं।

आदरणीय डॉ. जोशीजी ने इसी ऐश्वर्य की संसिद्धि के मूलाधार ऋग्वेद को भाष्य के लिए सर्वप्रथम चुना है। वेदवादियों की 'तस्मात् वेदस्य वादता' की उक्ति जोशीजी के इस कार्य से पर पूर्णतः सार्थक सिद्ध होती है।

यह इस देश का दुर्भाग्य रहा है कि वेदों के मूलस्वरूप को समझने के लिए हमें विदेशी विद्वानों से मार्गदर्शन लेना पड़ रहा है। सर्व प्रथम जर्मन-विद्वानों ने और उसके बाद फ्रांस और इंग्लैंड के अंग्रेजी के विद्वानों ने वेदों में अभिरुचि ही नहीं अपितु तल्लीनता प्रकट की। अंग्रेज अत्यधिक व्यक्तिनिष्ठ और अपनी संस्कृति के, अपनी इंग्लिश जाति एवं आंग्ल परंपरा के सर्वाधिक समर्थक तथा पक्षपाती हैं। उन गुणग्राही अग्रेजों ने अपने विश्वविद्यालयों में जो विश्व का सबसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है – ओक्स फोर्ड विश्वविद्यालय –

एक गैर अंग्रेज जर्मन विद्वान् को अपने इस विश्वविद्यालय का प्रधानाचार्य (प्रिंसिपल) जो आज के कुलपति के समान होता है, नियुक्त किया, वे सज्जन थे डॉ. मेक्समूलर। डॉ. मेक्समूलर की रुचि थी संसार का ज्ञान-साहित्य और दर्शन-शास्त्र पढ़ने की और जब वे ऋग्वेद का दर्शन कर सके तो उन्होंने अपना ध्यान ऋग्वेद के अध्ययन में केन्द्रित किया और उन्होंने सायण के भाष्य का संशोधन करके संपादन एवं मुद्रण किया। उन्होंने ऋग्वेद के संशोधन एवं सम्पादन के रूप में जो पंक्तियाँ लिखीं वे हम भारतीयों के लिए गौरव सूचक हैं — **सायणाचार्यविरचितमाधवीयवेदार्थप्रकाशकाय भाष्यसहिता शार्मण्य- देशोत्पन्नेनेंगलदेशवासिना प्रधानाचार्येण भट्टमोक्षमूलरेण संशोधिता श्रीमद्भारतवर्षमहाराज्यामा- त्यानुमत्या च उक्षतरणाभिधाननगरे विद्यामंदिरसंस्थानमुद्रणालये च मुद्रिता। संवत् १९३१ वर्षे।**

यह वेद की महत्ता है कि मेक्समूलर मोक्षमूलर बन गए और प्रधानाचार्य शब्द का प्रयोग भी सबसे पहले उन्हीं के माध्यम से हुआ। इसके अतिरिक्त एक और नई मान्यता जर्मन शब्द के संबध में उनके द्वारा प्रतिपादित हुई। जर्मन का पर्याय उन्होंने 'शर्मन्' माना। इसीलिए अपने नाम से पूर्व मेक्समूलर 'शार्मण्य-देशवासी' का प्रयोग सगौरव करते रहे।

वेद वस्तुतः काव्य हैं और ऋग्वेद के लिए तो मान्यता है - **'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'** अर्थात् ऋग्वेद का देवस्तुतिपरक काव्य चिरन्तन है - **न ममार, न जीर्यति**, न यह मरेगा और नहीं वृद्ध होगा। सदा तरुण ही रहेगा। ऋचा शब्द का अर्थ है गायन। **'ऋचा त्वां पोषमास्ते'** और यह ऋचा गान हमें शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक पोषण देता है पर दुःख की बात है कि हमारे भारतीय विद्वानों ने वेद के साथ अनर्थ, इस सामान्य अर्थ को न समझने के कारण किया है। काव्य, उत्तम काव्य सदा व्यंजना प्रधान होता है और कभी-कभी लक्षणामूलक भी हो जाता है। व्यंजना बुद्धिमानों की ज्ञान सरणी है और हमारे विद्वानों ने इसे केवल अभिधा में देखा है। जिसका अर्थ केवल शब्द में है। इसीलिए **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया..** (ऋग्वेद १।१६४।२०, ऋषि दीर्घतमा औचथ्य) का आनन्द वे न ले सके। उन्हें दो पक्षी ही दिखाई दे रहे हैं[१]। ऋग्वेद का एक और मनोहर प्रसंग है - यज्ञ के स्वरूप का, यज्ञाग्नि के स्वरूप का, आदित्य के स्वरूप का -

चत्वारि शृङ्गा त्रयोअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥[२]

(ऋग्वेद ४।५८।३। ऋषि वामदेव गौतम)

अलग-अलग विचारधारा के मनीषियों ने इस ऋचा में अलग - अलग चार स्वरूपों की कल्पना की है। यह कविता है। उपर्युक्त सभी स्वरूपों का वेदमर्मज्ञ अलग - अलग अर्थ करते हैं पर ऐसा कोई विचित्र बैल जिसके चार सींग, दो सिर, सात हाथ होते थे, ऐसी भोंडी मान्यता को लेकर लोग नृतत्त्ववैज्ञानिकों (एन्थ्रोपोलोजिष्ट) से कहते हैं कि ऐसे किसी विचित्र बैल के अस्थिपंजर की खोज की जानी चाहिए। वस्तुतः यज्ञाग्नि का वर्णन करती ऋषि वामदेव गौतम की परमोच्च व्यञ्जना प्रधान एवं रूपकातिशयोक्तिमूलक अलङ्कार -ध्वनिप्रधान यह एक उत्तम कविता है।

डॉ. जोशी ने अपने इस लघुकाय ग्रन्थ में शक्ति, ऐश्वर्य के साथ वेदों में निहित विज्ञान के तत्त्व का भी

(१) पढ़िए शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोतवेद, पृष्ठ २७, २८

(२) पढ़िए परिशिष्ट ५

भली भाँति प्रतिपादन किया है। वस्तुतः विज्ञान-प्रज्ञान ही शक्ति एवं ऐश्वर्य की जननी हैं।

आज संयुक्त राष्ट्रसंघ की शान्ति समितियों में हमारे शुक्ल यजुर्वेद (३६।१७) का यह शान्तिमन्त्र पढ़ा जाता है -

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्ति - र्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥(१)

इसमे द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के बाद जल, ओषधि एवं वनस्पति से शान्ति की प्रार्थना है। इन सभी से प्राप्त शान्ति से ही सृष्टि में शान्ति होती है। ओषधि अन्न का वाचक है - ओषधयः यवादयः।

अमेरिकन वैज्ञानिक आकर्षण शक्ति की शोध में लगे हैं और ऋग्वेद (१०।१२१।५।) के ऋषि हिरण्यगर्भ प्राजापत्य का निम्नलिखित मन्त्र उनकी शोध का आधार बना हुआ है -
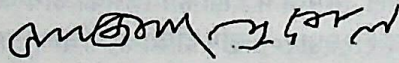
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं, येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥(२)

इसी प्रकार ब्रह्माण्ड, प्रकृति एवं सृष्टि के पूर्व की स्थिति एवं उत्पत्ति का निर्देश -

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकः आसीत् (ऋग्वेद १०।१२१।१ ऋषि हिरण्य गर्भप्राजापत्य) इस मन्त्र में मिल जाता है। (३)

मैं समझता हूँ कि बन्धुवर डॉ. जोशीजी ने वेदवादियों को चलने का मार्गदर्शन किया है। **'शुभास्ते पन्थानः सन्तु'** के साथ मैं डॉ. जोशीजी के लिए मङ्गल कामना करता हूँ।

ईशानकुञ्ज
केलासनगर मथुरा-वृन्दावन रोड़
अटल्ला चोकी के पास
वृन्दावन
(जि. मथुरा, उ. प्र.)
दूरभाष : 0565-444849.

(Prof. J. K. MUDGAL)
M. A. - Sans, Hindi, Pali, Lingua, History, Philosophy, India
ACHARYA - Sans, Veda, Nirukta, Darshan, Yoga, Dharma, Ayurveda
PALIRATNA- Shiromani, Vedavagish, Vidyavachaspati, D. Litt.

DIRECTOR
वैदिक विज्ञान अनुसंधानसंस्थानम्
Institute for Higher Research in Vedic Sciences
INDIC And Oriental Studies

१ पढ़िए परिशिष्ट ५
२ पढ़िए परिशिष्ट ५
३. पढ़िए परिशिष्ट ५

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

॥ प्रथमा सुवाचा ॥[१]

वैदिकयुग जैसा था, उसकी मनोहर झाँकियाँ हैं, ऋषि-ऋषिकाओं की कविताओं में ।

ऋषि, ऋषिकाओं ने देवों को, उषा को, सूर्य को, इन्द्र को, वायु को, जल को, अग्नि को, पृथ्वी को पूर्ण देखा; सौंदर्य में, बुद्धि में, बल में, विजय में, ऐश्वर्यों में, सुख में ।

सौंदर्य, बुद्धि, बल, विजय, ऐश्वर्य, सुख की उपलब्धि की कामनाएँ जागीं ऋषि-ऋषिकाओं में।

प्रसन्न करने देवों को ऋषि-ऋषिकाओं ने कविताएँ रचीं स्तुति में । गुण गाए । कामनाएँ व्यक्त कीं, देवों के सम्मुख । सखा, माता-पिता-भाई, राजा, बन्धु बनाया देवों को और गले लगाया। आदर से अपने यज्ञगृहों में बुलाया । आसन दिया । आतिथ्य किया । घी टपकती मधुर-मधुर हवि-अन्न की आहुतियों से तृप्त किया । सोम पिलाया भर-भर चमस आग्रहपूर्वक । आह्लादित किया। मदमत्त कर गुद्-गुदाया देवों को, ऋषि-ऋषिकाओं ने ।

देवों ने बदले में झोलियाँ भर दीं ऋषि-ऋषिकाओं की, सुख-सुहाग से ।

यही है सार ऋषि-ऋषिकाओं की वेदवाणियों का, कविताओं का । प्रस्तुत ग्रन्थ 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' में ऋषि-ऋषिकाओं की इन्हीं उपलब्धियों की झाँकियाँ हैं ।

वैदिकयुग वसंत का प्रभात था, चहचहाता, मधुर कोलाहल भरा, गीत-संगीत में थिरकता।

वैदिकेतरयुग पतझड़ की उदास संध्या । बुद्धकाल से आज तक भारत की पराजयों का, दासत्व का युग । ऋषि-ऋषिकाओं के वैदिकमार्ग को, यज्ञमार्ग को छोड़ने का दण्ड 'विनिपातः शतमुखम्' बल-ऐश्वर्य के सभी क्षेत्रों में भारतीय सत्त्व का अधः पतन, भारत तन-मन से निर्बल एवं पौरुषहीन।

प्रस्तुत ग्रन्थ को सुगण-साकार रूप दिया, मुद्रित किया, एतदर्थ उपकृत हैं, साहित्य मुद्रणालय के स्वामी श्री श्रेयस पण्ड्या, एवं व्यवस्थाधिकारी श्री शेखरजी, श्री दिनेशजी, श्री बालकृष्णजी पालीवाल एवं बाबूकाका के।

श्री विद्या फाउन्डेशन ट्रस्ट, भारत एवं अमेरिका आद्यस्थापक श्री लक्ष्मीकान्तजी पुरोहित (गुरुजी)ने वेदकार्य में गुर्जर-भारती को आर्थिक सहायता दी, एतदर्थ आभारी हूँ ।

वरेण्य श्रेष्ठि श्रीश्रीकृष्ण अग्रवाल ने सन् १९६७ में सत्साहित्य के प्रकाशन के लिए गुर्जर-भारती' की स्थापना की थी । गुर्जर-भारती' का यह चतुर्थ वेदपुष्प 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' सूरज की ऊर्जस्वित, वीर्यवती, प्रज्ञावती रश्मियों में खिला, महका है। सभी के लिए यह 'सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्'[२] हो। इसी शुभाशंसा के साथ —

॥ शुभम् ॥

—भावस्था

सन्तोष पाराशर

(आचार्या डॉ. सन्तोष पाराशर एम्. ए., पीएच्.डी.)

लक्ष्मीनगर, विसत पेट्रोल पंप के पीछे,
नर्सरी, साबरमती, अहमदाबाद ३८० ००५
(दूरभाष ०७९-७५०७८१४)
रक्षाबन्धन-दि. १५-८-२०००
स्वतन्त्रता-दिवस १५-८-२०००

१. ऋग्वेद १/११०/७/ ऋषि जमदग्नि भार्गव अथवा जामदग्न्य राम (परशुराम)।
२. ऋग्वेद ७/५९/१२/

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

॥ द्वा सुपर्णा ॥[१]

वेदों को सरल भाषा में साधारण जन के लिए समझने योग्य बनाया जाए, इस शिवसङ्कल्प के साथ १०-१०-९१ से ऋग्वेद का कार्य प्रारंभ क्रिया और ४-४-९८ को सूक्तसमीक्षा के साथ ३९३९ पृष्ठों में ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद पूरा किया । इस काम में ऋग्वेद के संस्कृत के ७ भाष्यों,[२] जर्मन-अंग्रेजी, व्याख्या, अनुवाद, कोश, निरुक्त की ७ टीकाएँ एवं वेदों से सम्बद्ध पूर्व-पश्चिम के समीक्षात्मक ग्रन्थों का मैंने उपयोग किया है । जिनका मैंने इस पुस्तक के अन्त में सन्दर्भग्रन्थसूची में उल्लेख किया है ।

अपने प्रथम ऋग्वेद के सूक्त समीक्षात्मक अनुवाद को देखकर लगा कि इसे और भी सरल एवं परिष्कृत बनाना चाहिए । इसके लिए मैंने निरुक्त की उपलब्ध ७ टीकाओं एवं निघण्टु की देवराजयज्वकृत टीका को आधार बना कर १॥ वर्ष में अपने उपयोग के लिए एक वैदिककोश तैयार किया है । इससे ऋषि और भी स्पष्ट हो गए हैं ।

ऋग्वेद के संस्कृत के ७ भाष्यों, अपना पूर्व अनूदित सूक्त समीक्षात्मक ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद, अपना वैदिक-कोश इत्यादि सामने रखकर २ मार्च, १९९९ से ऋग्वेद के सरलीकरण में मैं पुनः लग गया हूँ । इस बार ऋग्वेद के संस्कृत के ७ भाष्यों में से आचार्य वेंकटमाधव का ही भाष्य मैंने अपने अधिक निकट रखा है । ऋचाओं के अर्थ में यह ठीक चिड़िया की आँख देखता है । 'वर्जयन् शद्बविस्तरम्' इसकी प्रतिज्ञा है । इस बार शैली बदल दी है । मण्डल-परिचय, ऋषि-ऋषिका-परिचय, सूक्त-समीक्षा और मन्त्रार्थ । आज तक प्रथम मण्डल के छः ऋषि हो चुके हैं, ऋषि परिचय के साथ ।

इसी बीच मन में संकल्प उठा कि अपने आठ वर्ष के ऋषि-अनुभव को अभिव्यक्ति दूँ और इसीका परिणाम है - 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' । यह शीर्षक भी ऋषियों ने ही दिया है और उन्हींके जीवन का यह पर्याय है । शक्ति द्यु की सूर्यशक्ति है । ऐश्वर्य अन्तरिक्ष के इन्द्र का ऐश्वर्य है । विज्ञान पृथ्वी के वैश्वानर अग्नि का विज्ञान है । इन त्रिकों की समष्टि ही वेद हैं । इन त्रिकों की समष्टि ही ऋषि-ऋषिकाएँ हैं और ये त्रिक ही सृष्टि के स्रष्टा हैं । मनुष्य को ही नहीं प्राणिमात्र को ये त्रिक अहर्निश, आक्षण प्राप्त हो रहे हैं और इन्हीं से जीवन टिका है ।

इन्हीं दिनों 'मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय' उदयपुर के संस्कृत विभाग की अध्यक्षा डॉ. हेमलता बोलिया द्वारा वेद पर व्याख्यान के लिए मुझे निमंत्रण मिला। मैंने विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' विषय को ही केन्द्र में रखकर विचार व्यक्त किए थे । मैं डॉ. हेमलता बोलिया का सविशेष आभारी हूँ।

दुःख है कि हम बुद्धकाल से बौद्धों, जैनियों एवं पुराणों के बहकावे में आकर आज तक

१. ऋग्वेद १/१६४/२० ऋषि दीर्घतमा औचथ्य

२. देखिए, परिशिष्ट ४

वेदों को, वैदिक धर्म को, ऋषियों की प्रज्ञावती एवं वीर्यवती वाणियों को आदर नहीं दे पाए हैं। वेदों के नाम पर भयंकर पाखण्ड चल रहा है। रूढीवादी वेदों को न समझते हैं और न समझने देते हैं। एक अपौरुषेय की काली चादर सहेतु वेदों पर डाल रखी है और यों कुछ रूढीवादी स्वार्थों ने वेदों को आसुरी-ग्रहण में लपेट रखा है। इसीके कुफल हैं, दुर्बलता, दीनता, हीनता, दारिद्र्य, अंधविश्वास में भटकान, पराजय एवं दासत्व।

लोगों को वेदों के स्वरूप का सही ख्याल आए, इसके लिए ही मैंने हिन्दी में वेदों के अनुवाद का काम हाथ पर लिया है। वेदों में ऋग्वेद ही सर्वोत्तम वेद है और अन्य वेद ऋग्वेद पर ही आश्रित हैं। इसी दृष्टि से मैंने ऋग्वेद का अनुवाद पहले किया है। ऋग्वेद के दुबारा अनुवाद में जो क्रम अपनाया है - मण्डल-परिचय, ऋषि-ऋषिका परिचय, सूक्तसमीक्षा एवं मन्त्रार्थ, यह भी पाठकों को ध्यान में रखकर ही। साहित्य वास्तव में साहित्यकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का दर्पण होता है। यों ऋषि-ऋषिकाओं के मन्त्र भी उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के दर्पण हैं। अतः मैं मन्त्रों के आधार पर ही ऋषि-ऋषिकाओं का परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ।

कबीर काशी के पंडितों से कह रहा है - **'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखों-देखी।' 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद'** पुस्तक में ऋग्वेद के संबन्ध में जितना भी कहा गया है; वह मेरी अपनी 'आँखों-देखी' है। मैंने अपनी आँखों से ऋग्वेद की १०५५२ ऋचाओं में से प्रत्येक ऋचा के चरणों की गजगति के दर्शन किए हैं और गजगामिनी ऋचाओं के चरणों में विभूषित हिरण्यनूपुरों के क्वणन को मैंने अपने ही कानों से सुना है -

जे करसी उणरी हुसी आसी विण नूतीह।
आ नह किणरा बापरी भगती-रजपूतीह ॥[१]

भक्ति एवं रजपूती (शौर्य) किसी की बपौती नहीं है, जो करता है, उसकी ये होती हैं।

ऋचाएँ कहती हैं कि पूरे मन से, हेत-प्रीति से जो कोई हमारे पास आता है, हम स्वयं को उनके आगे ऐसे खोल देती हैं जैसे रत्नालंकारों से सजी कोई प्रियतमा स्वयं को अपने प्रियतम के आगे खोल देती हैं -

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ऋग्वेद १०/७१/४ ऋषि बृहस्पति आङ्गिरस।

(एक वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है और एक वाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता है पर एक के आगे वाणी (ऋचाएँ) अपने आपको ऐसे खोल देती है, जैसे कोई रत्नालंकारों से सजी मनोरमा प्रियतमा अपने आपको अपने प्रियतम के आगे खोल देती है।)

ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त वेदः पद का अन्तःसाक्ष्य, संहितासाक्ष्य, वेदसाक्ष्य, ऋषिसाक्ष्य के आधार पर एवं प्रकरण की दृष्टि से धन अर्थ होता है नहीं कि ज्ञान। ऋग्वेद काव्य है। इसके

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. २६४ पं. मोतीलाल मेनारिया, म्हैयारिया गोत्र के केसरिसिंह के पुत्र राजस्थान के डिंगल के कवि ठाकुर नाथूदान की 'वीरसतसई' का यह दोहा है। इस दोहे में कितना जीवन है!

मन्त्रों का यज्ञों में विनियोग बाद के याज्ञिकों की व्यवस्था है । ऋषि द्वारा जिस मन्त्र की रचना जिस निमित्त हुई है, बिना परिवर्तन के उस मन्त्र का उसी निमित्त प्रयोग होना चाहिए । प्रत्येक ऋषि एवं प्रत्येक ऋषिका स्वतन्त्र कवि एवं कवयित्री है । अतः इनके देवता (विषय) वर्णन की समीक्षा अलग से होनी चाहिए । मानवजीनव दो वृत्तियों पर अवलंबित है बल एवं काम। ऋग्वेद में इन्हीं पर ऋषियों ने अधिक बल दिया है । विज्ञान केवल विद्युत् में पुम् (Positive) एवं स्त्री (Negative) भेद मानता है पर ऋषि प्रकृति के सूर्यादि अंगों में भी इन दोनों भेदों को मानते हैं। वेद विरक्त संन्यासियों के लिए नहीं किन्तु अनुरक्त गृहस्थों के लिए हैं । वेद आत्मचिन्तनशास्त्र नहीं किन्तु लोकव्यवहारशास्त्र हैं । वैदिकसंस्कृति एवं पौराणिक संस्कृति दोनों अलग-अलग हैं। एक के मूल में देवस्तुतियाँ एवं यज्ञ हैं तो दूसरी के मूल में व्यक्तिपूजा, वंशपूजा (क्षत्रियपूजा) एवं अवतारवाद । बुद्ध से आज तक के बौद्ध जैन, पौराणिक इत्यादि सभी मत-पंथ वैदिकेतर एवं वेदविरोधी हैं । बौद्धों एवं जैनियों ने वेदों को नकारा पर पुराणों ने वेदों को अपने देव-देवियों एवं अवतारों को ऊपर उठाने की सीढ़ी मात्र बना लिया । कई उपनिषदों एवं भगवद्गीता में सोद्देश्य वेदीनिन्दा है । सिखपंथ को छोड़कर बुद्ध से आज तक के सभी मत-पंथों ने भारतीयों को दुर्बल क्लीब, दीन-हीन एवं मोक्ष-परलोकपरक ही बनाया है । सभीने जीवन की भयंकर उपेक्षा की है । उसीका परिणाम है दासत्व एवं दीनहीन जीवन ।

पूर्व सांसद् महामहिम महाराणा मेवाड़ (उदयपुर, राजस्थान) श्रीमान् महेन्द्रसिंहजी ने ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त धनवाची वेदः पद का मुझे अंग्रेजी में पर्याय दिया है ABUNDANCE अर्थात् सांसारिक सुख-वैभव-ऐश्वर्य की प्रचुरता । महद् शोभनमेतत् । धन्यवादार्हाः मेदपाटेश्वराः ।[१]

श्री एल्. एन्. गाड़ोदिया एण्ड सन् (दिल्ली) के स्वामी श्रेष्ठिवर श्री रामगोपालजी गाड़ोदिया ने प्रारंभ की तीन वर्ष की ऋषियात्रा के लिए पाथेय (मासिक) का प्रबंध कर दिया था । सूचना थी कि किसी से कहा नहीं जाए । इसी काल में पूज्यपाद स्वामी श्री सच्चिदानंदजी महाराज दन्ताली (पेटलाद, गुजरात)ने २८-१-९५ को ५ सहस्र की राशि प्रदान की । वेरण्य श्रेष्ठि श्री द्वारकादास धाबळिया (अहमदाबाद) ने भी वेद-कार्य के लिए पांच सहस्र की राशि प्रदान की है । प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में श्रेष्ठिवर श्री चिमनलाल अग्रवाल (अहमदाबाद)ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया है । श्रेष्ठिवर श्री आनंद चिड़िपाल, श्रेष्ठिवर श्री अनिल झाझड़िया, श्रीमती मीनाक्षी देवी झाझड़िया, श्रेष्ठिवर श्री रामेश्वरलालजी लाहोटी ने भी हमारे वेदयज्ञ में पुस्तक सहायता रूप आहुतियाँ अर्पित की हैं । ऋषि ऋण चुकाएँगे ।

डॉ. चि. ग. काशीकर (पूणे)ने पत्राचार द्वारा समय-समय पर मुझे ठीक ऋषि-मार्ग जताया है और मैं भटकने से बच गया हूँ । मैं श्रद्धेय गुरुचरणों में शत-शत बार नतमस्तक हूँ 'नमसा स्वध्वरः' नमस्कार रूप सुयज्ञ द्वारा । इस काम में भारत के राष्ट्रपति द्वारा सर्टिफिकेट ऑफ ऑनर से पुरस्कृत एवं पद्मश्री डॉ. प्रो. एस्तेर सोलोमन (पूर्व अध्यक्षा, संस्कृत-विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय), डॉ. प्रो. जयकुमार मुद्गल (निवृत्त आचार्य, वृन्दावन) प्रो. डॉ. विष्णुप्रसाद भट्ट

१. १२ सितंबर, २००० को समोरबाग (उदयपुर) में श्रीमान् महाराणा साहब के साथ हुई भेंट।

(संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर), प्रो. डॉ. दया दवे (संस्कृत-विभाग, विद्याभवन कॉलेज, उदयपुर) प्रो. डॉ. अंजना पालीवाल (संस्कृत-विभाग, मीरां गर्ल्स कॉलेज, उदयपुर) डॉ. प्रो. भगवतशरण अग्रवाल (भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, एल्. डी. आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद) एवं डॉ. आचार्या सन्तोष पाराशर ने वैचारिक योग दिया है । धन्यवादार्हाः सर्वे विद्वांसः विदुष्यश्च ।

श्रेष्ठिवर श्री रामगोपालजी गाड़ोदिया ने अपने पूज्य पिता दिवंगत श्री लक्ष्मीनारायणजी गाड़ोदिया की पुण्यस्मृति में मुझसे वैदिक काम प्रारंभ करवाया था । मैं यह प्रथम वैदिकपुष्प श्री लक्ष्मीनारायणजी गाड़ोदिया को समर्पित कर रहा हूँ ।

दिवंगत श्री लक्ष्मीनारायणजी गाड़ोदिया के परिवार में इस समय विद्यमान हैं – ८० वर्षीय पुत्र श्रेष्ठिवर श्री रामगोपालजी गाड़ोदिया, पौत्र श्री तेजपालजी, प्रप्रौत्र चि. आयु. राघव एवं पौत्रवधू गृहदेवता श्रीमती सुधादेवी –

॥ त्वं जी॒व श॒रदः॑ श॒तं वर्धमानः ॥

गाड़ोदिया परिवार के आप सभी सौ से भी अधिक वर्षों तक सुखपूर्वक रहें ।

शं न॑ ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः (ऋग्वेद-७/३५/१२ । ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ)

आप लोगों के पुण्यवान् वरदहस्तों के पुण्यों की सर्वदा अभिवृद्धि हो ।

वेदों को ही समक्ष रखकर सत्य कहने का प्रयत्न किया है - 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' हितकारी एवं मनोहर वचन दुर्लभ हैं । अतः मेरे कटुसत्य को भी आप धारण करेंगे क्योंकि कटु औषधी ही गुणकारी होती है । कवि दुष्यन्तकुमार कहते हैं -

हिम्मत से सच कहें तो बुरा मानते हैं लोग ।
रो-रो के बात कहने की आदत नहीं रही ॥
गजब है सच को, सच कहते नहीं वो ।
कुरानो उपनिषद् खोले हुए हैं ॥ 'सायें में धूप' ।

अपने 'वेदविद्या' ग्रन्थ में मनीषी वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं - "चिन्तन अपने केन्द्र में सिमट कर नहीं रह जाता, बल्कि अपने संकेतों को उन्मुक्त रूप में चारों ओर भेज कर प्रतीक्षा करता है कि उत्तर में कुछ सूत्र प्राप्त हों ।" सुज्ञ पाठकों से मेरा भी यही निवेदन है कि आपके द्वारा उत्तर में मुझे सूत्र (गुर, अभिप्राय) अवश्य प्राप्त हों । इससे सँवरने-सुधरने का मुझे अवसर मिलेगा ।

॥ शुभम् ॥

विदुषां विधेयः
[signature]
३१, प्रशान्तपार्क, पालड़ी,
अहमदाबाद-३८० ००७
दूरभाष : (०७९) ६६०४१५४
मकरसंक्रान्ति १४-१-२००१

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

विषय-सूची

(अंक पृष्ठ-संख्या के द्योतक हैं)

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद

१. वेद

ऋषिकाल और देश

आज से लगभग साढ़े छः हजार वर्ष पहले से साढ़े चार हजार वर्ष पहले तक, इन दो हजार वर्षों में उत्तरी ध्रुव, मध्य एशिया, प्राचीन आर्यान, आज का ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत में कश्मीर और पंजाब इतने विस्तृत भूभाग पर सैकड़ों ऋषि परिवार भू-पर नक्षत्रों की भाँति प्रकाशमान हुए । ये इतने प्रदेशों में रहे और समयानुसार इनमें से ये प्रतिकूल प्रदेशों को छोड़ते गए और अनुकूल प्रदेशों को ये अपनाते गए । ये ऋषि अन्तर्द्रष्टा कवि थे ।[१] ये मन्त्र-काव्य के स्रष्टा थे ।[२] ये साक्षात्कृतधर्मा थे ।[३] ये चक्षुष्मान् थे ।[४] देव इन्हें प्रत्यक्ष थे । देव अर्थात् ब्रह्माण्ड के पदार्थ ।

वेदों का सर्जन

वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । ये चारों वेद ऋषि-ऋषिकाओं के अनुभवों के अखंड भंडार हैं । ये विश्व-मानव की प्राचीनतम अमूल्य शब्दनिधि हैं । ये शक्ति, ऐश्वर्य और विज्ञान के अजस्र स्रोत हैं । मैं यहाँ इन चारों वेदों के सर्जन, वैदिक साहित्य की व्याप्ति और वेदों में श्रेष्ठ ऋग्वेद का रसदर्शन एवं अवैदिक मत-पंथ-संप्रदायों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

विश्व की किसी भी भाषा में साहित्य की रचना पहले पद्य में होती है और बाद में गद्य में । वेदों के मन्त्रों की रचना में भी यही क्रम रहा है । वेद-मन्त्र पहले ऋक् में रचे गए हैं। ऋक् अर्थात् पद्य और बाद में यजुष् में रचे गए हैं । यजुष् अर्थात् गद्य । ऋकों का संग्रह ही ऋग्वेद है । ऋकों का संग्रह होने से ही यह ऋग्वेद कहलाता है । यों ऋग्वेद वेदों में रचित प्रथम वेद है । यजुषों का संग्रह ही यजुर्वेद है । यजुषों का संग्रह होने से ही यह यजुर्वेद कहलाता है । वैदिककाल में ऋग्वेद की रचना के काफी बाद जब कर्मकाण्डी याज्ञिक पुरोहितों ने यज्ञों का विस्तार किया । कई दिनों तक चलने वाले और भारी दक्षिणा वाले बड़े-बड़े यज्ञ प्रारंभ हुए तब यज्ञों की विधि की व्यवस्था के लिए दो वेद और अस्तित्व में आए - यजुर्वेद और सामवेद । इन दोनों वेदों का आधार भी ऋग्वेद ही है । ऋग्वेद, यजुर्वेद और

---

१. अन्तर्दर्शनसम्पन्ना ऋषयः कवयः स्मृताः ॥ ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका, कपाली शास्त्री ।
२. ऋषयो मन्त्रकाव्यस्य कर्तारः कवयः स्मृताः ॥ ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका, कपाली शास्त्री ।
३. ऋषिर्दर्शनात् । साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः ॥ निरुक्त, यास्क । १/२०
४. येषां चक्षुष्मतां प्राचां देवाः प्रत्यक्षतां गताः ॥ ऋग्वेदभाष्य-भूमिका, कपाली शास्त्री ।
५. वेदश्चक्षुः सनातनम्-वेद सनातन चक्षु हैं, अतः ऋषि चक्षुष्मान् हैं । मनुस्मृति ।

सामवेद इन तीनों वेदों का ही यज्ञ में उपयोग होता है । अतः ये तीनों मिल कर ही वेदत्रयी कहलाते हैं । चौथा वेद अथर्ववेद है । यह यजुर्वेद और सामवेद की भाँति याज्ञिक कर्मकाण्ड का संग्रह नहीं है ।

ब्राह्मणों द्वारा वेद-रक्षा

वैदिक काल में लिपि नहीं थी । वेदमन्त्र पीढ़ी दर पीढ़ी हजारों वर्षों तक कंठस्थ रखे गए हैं । उदात्त, अनुदात्त, स्वरित इत्यादि स्वरों में बँधे चारों वेदों के २०४३३ मन्त्र ऋषियों द्वारा जिस तरह उच्चरित हुए थे, आज हजारों वर्षों के बाद भी ठीक उसी तरह सुरक्षित हैं । ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी, अथर्ववेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी, त्रिपाठी, चतुर्वेदी, सुब्रह्मण्यम्, चौबे, दवे, तिवारी, याज्ञिक, मिश्र, शुक्ल, वाजपेयी, अध्वर्यु, अध्यारु जैसी पदवियाँ आज जो ब्राह्मणों के नामों के साथ जुड़ी मिलती हैं, ये इसके प्रमाण हैं कि इनके पूर्वजों ने वेदमन्त्रों को हजारों वर्षों तक कंठस्थ रखा है । भला, सोने को तो कोई भी अंटी में दबाए रखेगा पर हजारों वर्षों तक वेदमन्त्रों को सस्वर अपने कंठ से लगाए रखना वेदों के प्रति प्रगाढ निष्ठा और अपने आप में यह एक असाधारण तप है । मन्त्र को ब्रह्म कहते हैं । अतः मन्त्रों के रचयिता ऋषि-ऋषिकाएँ तथा मन्त्रों के रक्षक दोनों ही ब्राह्मण कहलाए ।

ऋग्वेदकालीन वैज्ञानिक उपासना : यज्ञ

ऋग्वेदकाल में न जगत् देशों में बँटा था और न ही मानव ऊँच-नीच जैसी जातियों में ही बिखरा हुआ था । जातियाँ थीं तो मोटे रूप में दो ही । एक ऋषियों के मार्ग पर चलने वाली और दूसरी ऋषियों के प्रतिकूल चलने वाली ।

यज्ञ अपने आप में प्रकृति और जीवन को पुष्ट करने का एक वैज्ञानिक उपाय है । संक्षेप में कहें तो सूर्यादि देवों का भौतिक सृष्टि के रूप में परिणत होना तथा भौतिक सृष्टि का पुनः देवमय होना ही यज्ञ है तथा यही सृष्टि की प्रक्रिया है, यही सृष्टिचक्र है ।

पूर्वमीमांसा में कहा गया है – **'देवता उद्देशेन द्रव्यत्यागः यागः'** देवता को लक्ष्य करके हवि-अन्न-सोम की आहुति देना यज्ञ है पर यज्ञ का प्रयोजन और भी है । ऋषि स्वयं को देवों की भाँति शक्तिमान्, ऐश्वर्यवान् एवं विज्ञानवान् बनाने के लिए मन्त्रों में देवों की महिमा गाते थे और यज्ञ द्वारा स्वयं को उनके साथ जोड़ते थे । जोड़ने का काम अग्नि करता है । अतः ऋषि स्वयं को जिस देव के साथ जोड़ना चाहते थे, उसका मन्त्र बोलकर वे अग्नि में आहुतियाँ देते थे । ऋषियों को यह विश्वास था कि मन्त्र में कहे गए देव को अग्नि आहुतियाँ पहुँचाता है क्योंकि अग्नि देवों का मुख है ।[१] फिर जगत् देवों के अधीन है और देव मन्त्र के अधीन हैं ।[२] ऋग्वेद का प्रथम भाष्यकार (७वीं शती, वल्लभीपुर, सौराष्ट्र, गुजरात) आचार्य स्कन्दस्वामी कहता है – 'स्तुत्या हि देवता विक्रीयन्ते' मन्त्र-स्तुति से देवता क्रीत किए जाते हैं । देवता मन्त्र-स्तुति से अधीन हो जाते हैं । ऋषि मन्त्र में अपनी कामना प्रकट करते थे और देव उसे पूरी करते थे । यों देवों और ऋषियों का परस्पर लेन-देन का संबन्ध था । स्तुतियाँ और आहुतियाँ लो और बदले में कामनाएँ पूरी करो । इस हाथ लो और उस हाथ दो ।

ऋग्वेदकाल की यही साधारण-सी घरेलु देवोपासना और यज्ञोपासना थी ।

१. यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायां स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्देवतो स मन्त्रो भवति ।
२. देवाधीनं जगत् सर्वं मंन्त्राधीनाश्च देवताः ।

सामवेद

सामवेद अलग वेद नहीं है । सोमयज्ञ के लिए और यज्ञों में मनोरंजन के लिए ऋग्वेद में से ही ऋचाएँ चुनकर जो अलग संग्रह बनाया गया, वही सामवेद है । यों पूरा सामवेद ऋग्वेद में है । सामवेद में १८७५ ऋचाएँ हैं । इसमें ७५ ऋचाएँ ऐसी हैं जो वर्तमान ऋग्वेद में नहीं हैं पर ये ऋचाएँ भी निश्चित ही ऋग्वेद की ही किसी लुप्त शाखा की हैं । ऋग्वेद की २१ शाखाएँ थीं । आज उनमें से केवल एक ही शाखा बची हैं – 'शाकलशाखासंहिता' ।[१] इसीको हम ऋग्वेद कहते हैं । साम गीत (Song) को कहते हैं । उद्गाता नामक ऋत्विज् यज्ञ के समय संगीत के स्वरों में ऋचाएँ गाता है ।

वेदों की शाखाएँ

शाखाएँ किसी वेद के स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं हैं पर ये किसी एक ही वेद के साधारण से अन्तर के साथ अलग-अलग संग्रह हैं । जैसे ऋग्वेद की २१ शाखाएँ थीं तो उनमें परस्पर दो ही तरह का अन्तर था । एक, उच्चारण का अन्तर और दूसरा अन्तर यह कि कई मन्त्रों का एक शाखा के संग्रह में मिलना और दूसरी शाखा के संग्रह में नहीं मिलना ।

'सामवेद' की एक हजार शाखाएँ थीं 'सहस्रवर्त्मासामवेदः।' इनमें से आज केवल तीन शाखाएँ बची हैं – 'कौथुमशाखासंहिता', 'राणायणीयशाखासंहिता' और 'जैमिनीयशाखासंहिता ।'

'यजुर्वेद' की १०१ शाखाएँ थीं । इनमें से आज केवल ६ शाखाएँ बची हैं । ४ कृष्णयजुर्वेद की – 'कठशाखासंहिता', 'कपिष्ठलशाखासंहिता', 'मैत्रायणीशाखासंहिता' और 'तैत्तिरीयशाखासंहिता' । २ शुक्लयजुर्वेद की – वाजसनेयीशाखासंहिता (माध्यन्दिनशाखासंहिता) और काण्वशाखासंहिता।

अथर्ववेद की ९ शाखाएँ थीं । उनमें से आज केवल २ बची हैं – 'शौनकशाखासंहिता' और 'पैप्पलादशाखासंहिता' । 'पैप्पलादशाखासंहिता' में स्वरचिह्न नहीं हैं और यह कई स्थानों पर अशुद्ध है ।[२]

यों वेदों की ११३१ शाखाओं में से आज केवल १२ शाखाएँ बची हैं । इसमें प्रमाद किसका ? दुर्बलता किसकी ? बुद्धकाल से आज तक भारतीय सत्त्व का दिन प्रतिदिन ह्रास देख कर मूर्धन्य मनीषी काका कालेलकर अपनी पीड़ा व्यक्त कर रहे हैं – "मगर हमें तो खण्डित मूर्तियों को देखने की आदत सदियों से पड़ी हुई है ।"[३]

---

१. शकल के पुत्र वैयाकरणी शाकल्य थे । इनका समय महाभारत का रचना काल (ई. पू. ६००) माना जाता है । ये ऋग्वेद के पदपाठकार थे । इसीलिए वर्तमान 'ऋग्वेद' 'शाकलशाखासंहिता' के नाम से प्रसिद्ध है। शाकलसंहिता, पदपाठ, हस्तलिखित, प्रति शाके १७३ की मेरे (डॉ. भ्रमरलाल जोशी के) पास है । शाकलर्कसंहिता, राजाराम तुकाराम तात्याभिख्येन तत्त्वविवेक मुद्रणयन्त्रालये मुद्रितम् शालीवाहन शकाब्दाः १८२२/ई. सन् १९०० मेरे पासे है। शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयीशाखासंहिता (माध्यन्दिनशाखासंहिता) के पदपाठकार भी शाकल्य ही माने जाते हैं । – संस्कृतवाङ्मयकोश, ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार भाग. डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर । २. पत्र १५-४-९९, डॉ. चि. ग. काशीकर । ३. उभयान्वयीनर्मदा' लेख से ।

यजुर्वेद

'यजुर्वेद' केवल यज्ञीय कर्मकाण्ड का वेद है । इसमें काव्यत्व नहीं है । आचार्य सायण इसकी यज्ञीय कर्मकाण्ड की महत्ता स्थापित करते हुए इसे भित्ति (दीवार) कहते हैं, जिस पर 'ऋग्वेद' और 'सामवेद' केवल चित्र हैं । भित्तिस्थानीयो यजुर्वेदश्चित्रस्थानीयावितरौ ।[१] यों यज्ञीय कर्मकाण्ड की दृष्टि से 'यजुर्वेद' मुख्य और 'ऋग्वेद', 'सामवेद' गौण हैं । यज्ञ में यजुर्वेदी अध्वर्यु कहलाता है । यह यज्ञगृह के शारीरिक-श्रम के कर्म संपन्न करता है । यजुर्वेद को अध्वर्युवेद भी कहते हैं । यजुर्वेद में अनेक ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं । यह दो रूपों में मिलता है - कृष्णयजुर्वेद और शुक्लयजुर्वेद । कृष्णयजुर्वेद प्राचीन है तथा शुक्लयजुर्वेद इसके बाद का है । कृष्णयजुर्वेद में ब्राह्मणभाग मिला हुआ है । इसी कारण इसे कृष्णयजुर्वेद कहते हैं । आजकल शुक्लयजुर्वेद का प्रचार अधिक है । इसमें ४० अध्याय और १९७५ मन्त्र हैं । २५ अध्याय तक ही शुक्लयजुर्वेद पूरा हो जाता है । आगे के १५ अध्याय खिल हैं । खिल अर्थात् किसी मूल संग्रह में बाद में जोड़ा गया अंश, प्रक्षिप्त अंश । शुक्लयजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से प्रसिद्ध है, जो मूल शुक्लयजुर्वेद का भाग नहीं है ।

अथर्ववेद

'अथर्ववेद' में विशेषतः अथर्वा और अङ्गिरा इन दो ऋषिकुलों के मन्त्र हैं इसीलिए इसका पूरा नाम है - अथर्वाङ्गिरससंहिता । अथर्वा ऋषियों के मन्त्र पौष्टिक कर्मों के हैं । पौष्टिक कर्म अर्थात् पुष्टिकारी, वृद्धिकारी और कल्याणकारी कर्म । अङ्गिरा ऋषियों के कर्म शान्तिकर्म और अभिचारकर्म के हैं । मारण, वशीकरण, जादू-टोना, झाड़-फूँक इत्यादि अभिचारकर्म हैं ।

दूसरे वेदों से अथर्ववेद एकदम भिन्न एवं विलक्षण वेद है । विषय की दृष्टि से इसे हम अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत के रूप में विभक्त कर सकते हैं । अध्यात्म में ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि अधिभूत में राजा, राज्यशासन, संग्राम, शत्रु इत्यादि और अधिदैवत में देवता, यज्ञ, काल इत्यादि विषय आएंगे ।

अथर्ववेद को **ब्रह्मवेद** कहते हैं क्योंकि इसमें ब्रह्मविद्या एवं सृष्टि के गूढ रहस्यों का वर्णन है । इसको **क्षात्रवेद** भी कहते हैं क्योंकि प्राचीन काल में राजनीति, राज्यव्यवस्था, युद्ध इत्यादि में अथर्ववेदी महत्त्वपूर्ण माना जाता था । इसको **पुरोहितवेद** भी कहते हैं क्योंकि शासन- व्यवस्था में अथर्ववेदी अगुआ माना जाता था । पुरोहित का अर्थ है पुर अर्थात् आगे, हित अर्थात् रहनेवाला। इसको हम **लोकवेद** भी कह सकते हैं क्योंकि यह जनसाधारण के सुख-दुःख के साथ जुड़ा वेद है । इसमें रोगनाशक औषधियाँ, तंत्र-तावीज के उपचार भी वर्णित हैं । यज्ञ में अथर्ववेदी ब्रह्मा कहलाता है । यह यज्ञकर्मों का निरीक्षक होता है । यज्ञ में त्रुटि होने पर यह प्रायश्चित्त का विधान करता है । अथर्ववेद में २० काण्ड और ६०३१ मन्त्र हैं । ६०३१ मन्त्रों में १२०० मन्त्र ऋग्वेद के मिले हुए हैं ।

१. तै. सं. भा. ३ । पृष्ठ ५ पर टिप्पणी १

अथर्ववेद को वेद के रूप में मान्यता बाद में मिली है । ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ के पुत्र अपने पिता की स्तुति में उन्हें वेदत्रयी का ही पुरोहित कह रहे हैं ।[१] इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद के रचनाकाल के प्रथम चरण तक अथर्ववेद को वेद के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी ।

११वीं शती के ग्रन्थ 'अमरकोश' (१/६/३) में भी वेदत्रयी का ही उल्लेख है ।

ऋग्वेद और अथर्ववेद की तुलना

ऋग्वेद की ही भाँति अथर्ववेद एक मौलिक वेद है । ऋग्वेद देवताओं का स्तुतिपरक वेद है तो अथर्ववेद लौकिक मन्त्र-तन्त्रों का प्रकीर्ण संग्रहात्मक वेद है । ऋग्वेद धनाढ्य एवं सुसंस्कृत समाज के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला वेद है तो अथर्ववेद जन साधारण का प्रतिनिधित्व करने वाला वेद है । ऋग्वेद में अधिकांश मन्त्र आधिदैविक एवं आध्यात्मिक विषयों के हैं तो अथर्ववेद में आधिभौतिक विषयों के हैं ।[२] यों ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों ही वेद एक दूसरे के पूरक हैं । वैदिकयुग के आचार-विचार, सामाजिक व्यवस्था इत्यादि को समझने के लिए ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों ही वेदों का अध्ययन आवश्यक है । डॉ. बलदेव उपाध्याय अथर्ववेद को ऋग्वेद के जितना ही पुराना मानते हैं ।[३]

वेद और वेदाङ्ग

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण मिल कर वेद हैं । मन्त्र अर्थात् मन्त्रात्मक चारों वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म (मन्त्र) की जिनमें व्याख्या है, वे ग्रन्थ । ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यकग्रन्थ और उपनिषद्ग्रन्थ ये तीनों मिल कर ब्राह्मण कहलाते हैं । पं. मोतीलालजी शास्त्री चारों वेदों को मूलवेद और ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यकग्रन्थ तथा उपनिषद्ग्रन्थ इन तीनों प्रकार के ग्रन्थों को तूलवेद कहते हैं ।[४] मूलवेदों के निष्कर्ष को, अर्थ को जिनमें समझाया गया हैं वे ग्रन्थ तूलवेद हैं । तूल शब्द √तूल निष्कर्षे भ्वादि के धातु से बना है। **निष्कर्षोऽन्तस्थः बहिर्निःसारणम्** अर्थात् भीतर के अर्थ को प्रकट करना निष्कर्ष है, तूल है । हम बातचीत में अरबी भाषा के शब्द का प्रयोग करते हैं - 'इस बात को तूल मत दो ।'

ब्राह्मणग्रन्थ

ब्रह्म का अर्थ है वेद, यज्ञ एवं मन्त्र । ब्राह्मणग्रन्थ का अर्थ है, वे ग्रन्थ जिनमें वेदों के मन्त्रों की तथा यज्ञ के विधि-विधानों की व्याख्या है । ब्राह्मणग्रन्थ गद्य में हैं । इनमें याज्ञिक कर्मकाण्ड के माध्यम से वेदमन्त्रों की व्याख्या की गई है । इनका समय लगभग ई. पू. ३००० से ई. पू. २००० तक माना गया है ।[५] वेदों की शाखाओं की भाँति अनेक ब्राह्मणग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं । आजकल उपलब्ध ब्राह्मणग्रन्थ इस प्रकार हैं -

---

१. ऋग्वेद ७/३३/१४ उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं... २. आधिदैविक = सूर्यादि देवों से संबंधित। आध्यात्मिक = व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख से संबंधित। आधिभौतिक = लौकिक जीवन से संबंधित । ३. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. २३० ४. वेद का स्वरूप विचार पृ. ६. ४. वैदिक साहित्य का इतिहास, डॉ. कर्णसिंह पृ. ८० ।

ऋग्वेद के – (१) ऐतरेयब्राह्मण (२) कौषीतकीब्राह्मण (शाङ्ख्यायनब्राह्मण)
शुक्लयजुर्वेद का – (३) शतपथब्राह्मण ।
कृष्णयजुर्वेद का – (४) तैत्तिरीयब्राह्मण ।
सामवेद के – (५) ताण्ड्यब्राह्मण (पञ्चविंश ब्राह्मण) (६) षड्विंशब्राह्मण (७) जैमिनीयब्राह्मण ।
अथर्ववेद का – (८) गोपथब्राह्मण ।

आरण्यकग्रन्थ

'अरण्ये भवं आरण्यकम्' अर्थात् जो विचार और कर्म अरण्य में रहकर होते हैं वे आरण्यक हैं । ब्राह्मणग्रन्थों में धनिक गृहस्थों के यज्ञों के विधान हैं पर आरण्यकग्रन्थों में अरण्यवासी वानप्रस्थियों के सरल और कम खर्चीले यज्ञों तथा ब्रह्म, आत्मा, जीव इत्यादि विषयों के विचार निरूपित हैं । सामान्य रूप में जितने वेद हैं उतने ही ब्राह्मणग्रन्थ और उतने ही आरण्यकग्रन्थ होने चाहिएं पर आज केवल आठ ही आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध हैं –

ऋग्वेद के – (१) ऐतरेयआरण्यकग्रन्थ (२) शाङ्ख्यायनआरण्यकग्रन्थ ।
कृष्णयजुर्वेद के – (३) तैत्तिरीयआरण्यकग्रन्थ (४) मैत्रायणीआरण्यकग्रन्थ ।
शुक्लयजुर्वेद के – (५) माध्यन्दिनबृहदारण्यकग्रन्थ (६) काण्वबृहदारण्यकग्रन्थ ।
सामवेद के – (७) जैमिनीयोपनिषद् आरण्यकग्रन्थ अथवा तवल्कार आरण्यकग्रन्थ
(८) छान्दोग्यआरण्यकग्रन्थ ।

उपनिषद्ग्रन्थ

उप+नि+✓सद् (बैठना) = उपनिषद् । उपनिषद् का अर्थ है - पास में, आश्रय में बैठना। गुरु के पास उनके आश्रय में बैठकर, रहकर ब्रह्म, जीव, आत्मा, जगत्, इत्यादि गूढ विषयों की चर्चा करना । उपनिषदों का यज्ञों के साथ बिलकुल संबन्ध नहीं है । भारत के सभी दार्शनिक–सम्प्रदायों के आधार उपनिषद् ग्रन्थ हैं । उपनिषद् ग्रन्थ १०८ हैं । इनमें से महत्त्वपूर्ण इस प्रकार हैं –

ऋग्वेद से सम्बन्धित - (१) ऐतरेय उपनिषद् (२) कौषीतकी उपनिषद् ।
कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित -(३) तैत्तिरीय उपनिषद् (४) कठ उपनिषद् ।
(५) श्वेताश्वतर उपनिषद् (६) मैत्री उपनिषद् ।
शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित - (७) बृहदारण्यक उपनिषद् (८) ईश उपनिषद् । (ईशावास्योपनिषद्)
सामवेद से सम्बन्धित - (९) छान्दोग्य उपनिषद् (१०) केन उपनिषद् ।
अथर्ववेद से सम्बन्धित -(११) मुण्डक उपनिषद् (१२) माण्डुक्य उपनिषद्
(१३) प्रश्न उपनिषद् ।

हमने यहाँ संक्षेप में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया हैं । समीक्षक वाचस्पति गैरोला अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास (पृ. ११४)में वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् साहित्य का शैली, सरणि एवं उद्देश्य की दृष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के बाद सार रूप में लिखते हैं - 'वेदों के कर्ता कवि थे, ब्राह्मणों के पुरोहित और उपनिषदों के रहस्यवादी सन्त ।'

वेदाङ्ग

वेदों का पाठ सस्वर शुद्ध बना रहे, वेदों के उच्चारण शुद्ध बने रहें, वेदों के अर्थ का सही ज्ञान हो, वैदिक यज्ञोपासनां की विधियों का स्वरूप सुरक्षित रहे, जिससे यज्ञ शुद्ध रूप में संम्पन्न हों, वेदों का गौरव अक्षुण्ण बना रहे, वेदों की महिमा अक्षोभ्य बनी रहे, ऋषि-ऋषिकाओं का अन्तर्दर्शन अम्लान बना रहे, विद्वेषियों, द्रोहियों, निन्दकों, शत्रुओं से वेदों की सम्पूर्ण रक्षा हो इत्यादि वेद-हितों को ध्यान में रखकर तपःपूत आचार्यों एवं मुनियों ने वेदाङ्गों का सर्जन किया था । वेदाङ्ग छः हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष । वेद को एक विराट् पूर्ण पुरुष मानकर रूपक की शैली में पाणिनीयशिक्षा में वेदाङ्गों का छन्दोबद्ध वर्णन इस प्रकार है –

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

अर्थात् वेदपुरुष के छन्द पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष आँखें हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नाक है और व्याकरण मुंख है । वर्णन पढ़कर एक पूर्णपुरुष का साक्षात् गतिमान् शब्दचित्र हमारे स्मृतिपटल पर अंकित हो जाता है ।

हमारे पूर्वजों ने वेदों की सुरक्षा के लिए कैसे-कैसे प्रयत्न किए हैं ! और हम हैं कि अपने प्रमाद पर और अपनी कृतघ्नता पर लजाते भी नहीं हैं ।

वेदः धननाम

ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त 'वेदः' पद का अर्थ धन होता है । इसी तथ्य को मैं यहाँ स्पष्ट कर रहा हूँ । ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त वेदः पद का प्रारंभ में तो अर्थ मन्त्रों का संग्रह ही माना गया था । 'मुण्डक उपनिषद्' (१/४) में इस अर्थ में इस 'वेदः' का प्रयोग मिलता है – 'तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः' फिर 'वेदः' की व्याख्या है – 'वेदशब्देन तु सर्वत्र शब्दराशिर्विवक्षितः'।[१] 'संहिता' पद का अर्थ है इकट्ठा किया हुआ मन्त्रों का संग्रह। इस अर्थ में इसका प्रयोग भी उपनिषदों में मिलता है ।[२] यों 'वेद' और 'संहिता' दोनों ही पद एक ही अर्थ वाले हुए । ऋग्वेद कहो या ऋक्संहिता कहो पर यदि ऋग्वेदसंहिता ऐसा प्रयोग कर बैठेंगे तो यहाँ पुनरुक्ति दोष होगा ।

आचार्य यास्क कहते हैं – मन्त्रों का अर्थ प्रकरण को समझकर करो, संदर्भ को समझकर करो । इस दृष्टि से ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त 'वेदः' पद का अर्थ धन होता है, क्योंकि –

(१) ऋषि-ऋषिकाओं ने अपनी मन्त्र-स्तुतियों में और आहुतियाँ प्रदान करते हुए देवों से उन्होंने केवल धन की ही कामना की है । धन अर्थात् संसार के सभी भौतिक ऐश्वर्य और सुख के साधन ABUNDANCE ।

(२) ऋषियों ने ऋग्वेद में १४ बार वेदः पद का प्रयोग किया है और वह भी केवल धन के ही अर्थ में । ध्यान रहे, वेदः संज्ञा है, क्रिया नहीं ।[३]

---

१. मुण्डकोपनिषद् (धर्मकोश – लक्ष्मण शास्त्री जोशी) १/४/पृ. १४४५ ।
२. पत्र १५-४-९९ । चि. ग. काशीकर
३. देखिए परिशिष्ट-३ वेदः धननाम ।

(३) ऋषि अग्नि को जातवेदः कहते हैं, क्योंकि अग्नि जातः अर्थात् 'उत्पन्न हुआ 'वेदः' अर्थात् धन है । ऋग्वेद में इस पद का जातवेदः, जातवेदसम्, जातवेदाः, जातवेदसे, जातवेदसि इत्यादि विभक्ति रूपों में १०० से भी अधिक बार ऋषियों ने प्रयोग किया है और वह भी केवल धन के अर्थ में ही ।[१]

४. ऋषि कुत्स आङ्गिरस कहता है – असुर कवय ने 'केतंऽवेदाः' धन जान लिया है – केतं ज्ञातं वेदः धनम् येन सः केतवेदाः (ऋग्वेद-१।१०४।३।)

(५) वेदों में धन अर्थवाले 'वेदः', 'जातवेदः' 'केतवेदाः' इत्यादि प्रयोगों को देखकर वैदिकपदसंग्रह 'निघण्टु' में धन के १८ नामों में वेदः का भी उल्लेख है 'वेदः धननाम' । (२।१०।४)

उपर्युक्त अन्तःसाक्ष्य, संहितासाक्ष्य, वेदमन्त्रों के साक्ष्य, श्रुतिसाक्ष्य, ऋषिसाक्ष्य के तर्क इस मत को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त 'वेदः' पद का अर्थ धन ही होता है । धन अर्थात् सांसारिक सुख-वैभव-ऐश्वर्य की प्रचुरता ABUNDACE. यह 'वेदः' पद तुदादि के लाभ अर्थवाले ✓ विद्लृ धातु से बना है । अन्तःसाक्ष्य अर्थात् वेदमन्त्रों के साक्ष्य, वेदःसाक्ष्य, ऋषियों के साक्ष्य, श्रुतिसाक्ष्य । श्रुति राजाज्ञा है । (मीमांसा) राजा की आज्ञा अटल होती है । दुर्निवार होती है **'निर्पेक्षोरवःश्रुतिः'** । श्रुति अपने अर्थ को समझाने के लिए स्वयं ही समर्थ है । (मीमांसा) । फिर **'मन्त्रो मूलं ततः शाखा ब्राह्मणोपनिषत्ततिः'** (ऋग्वेदभाष्य भूमिका, कपाली शास्त्री) चारों वेदों के मन्त्र ही मूल हैं । ब्राह्मण, उपनिषद् शाखाएँ हैं । यों मन्त्र ही अपने आप में अकाट्य प्रमाण हैं ।

यों ऋग्वेद का अर्थ है ऋक् ही धन, यजुर्वेद का यजुष् ही धन, सामवेद का साम ही धन और अथर्ववेद का अथर्वा, अङ्गिराओं के मन्त्र ही धन ।

ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त 'वेदः' का ज्ञान अर्थ अप्राकरणिक

ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त वेदः पद का ज्ञान अर्थ भी देखने में आया है पर यह एकदम अप्राकरणिक है । यह वेदों के उद्देश्य एवं ऋषियों के प्रयोजन से सर्वथा विपरीत है । वेदों के उद्देश्य को और ऋषि-ऋषिकाओं के मन्त्रसर्जन के प्रयोजन को बिना जाने ही यह अनर्थ हुआ है । हमें लगता है कि आयुर्वेद, धनुर्वेद जैसी परवर्ती विधाओं के नामों में प्रयुक्त ज्ञानवाची वेदः पद के अनुकरण पर औपनिषदिक प्रभाव में जी रही विरक्तपरंपरा ने अज्ञानवश ऋग्वेदादि नामों में प्रयुक्त वेदः पद का भी ज्ञान अर्थ कर दिया है । एक न्याय है – 'वटयक्षन्याय' । किसी ने कह दिया कि इस वट (बरगद) में यक्ष (प्रेत) रहता है और फिर इस अंधी मान्यता को लोग पीढ़ी दर पीढ़ी मुंडी हिला कर मानते चले जाते हैं । वैसे ही वेद के ज्ञान अर्थ के बारे में भी हुआ है । वेदों को पढ़िए । ऋषि-ऋषिकाओं को तो वेदः (धन), द्रविणम्, रत्नम्, भगः, वसु, मघम् चाहिए । फिर ज्ञान अर्थ वाला वेदः पद ऋग्वेद के लिए तो एकदम पराया है । ऋषि-ऋषिकाओं ने ज्ञान अर्थ में इसका कहीं भी प्रयोग नहीं किया है । यह ज्ञान अर्थवाला वेदः पद अदादि के विद् जानना धातु से बना है । ऋग्वेद में ज्ञानम् देवतावाला ११ ऋचाओं का ऋषि बृहस्पति आङ्गिरस का एक सूक्त अवश्य है १० । ७१ । निरुक्त के व्याख्याता डॉ. उमाशङ्कर ऋषि ने इसे विद्यासूक्त कहा है । इसके साथ ही सञ्ज्ञानम् (सम्यक् ज्ञानम्) देवतावाली तीन ऋचाएँ भी हैं – १०/१९१/२-४ । ये ऋग्वेद की अन्तिम ऋचाएँ हैं ।

---

१. देखिए परिशिष्ट ३

२. ऋग्वेद का रसदर्शन

ऋग्वेद की महत्ता

नाभि एक ही होती है । श्वास वहीं से उठता है और वहीं विराम लेता है । ऋग्वेद वेदों की नाभि है । शेष वेद इसी से जुड़कर प्राण पा रहे हैं । अब हम वेदों की नाभि, वेदों के प्राण, शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के अजस्र स्रोत, प्राचीनतम एकमेव वेद ऋग्वेद पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं । 'एक एव परो वेदः स ऋग्वेद पुरातनः' ।[१]

ऋग्वेद संसार का सब से पुराना कविता-संग्रह है । यह लगभग ५०० सौ से अधिक ऋषि एवं ३० ऋषिकाओं की कविताओं का बहुत बड़ा संग्रह है । इसमें १०५५२ कविताएँ संगृहीत हैं । जिन्हें हम ऋक्, ऋचा, मन्त्र या छन्द कहते हैं । ये मन्त्र १०२८ सूक्तों में तथा ये सूक्त १० मण्डलों में विभक्त हैं । यों मन्त्रों से सूक्त एवं सूक्तों से मण्डल बनते हैं ।

ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग

मन्त्र रचने वाला ऋषि है - यस्य वाक्यं स ऋषिः । ऋषि मन्त्र में जिस विषय का वर्णन करता है वह देवता कहलाती है - 'या तेनोच्यते सा देवता ।' ध्यान रहे, देवता शब्द स्त्रीलिंग है । ऋषि का जितने अक्षर में एक मन्त्र है, उतना अक्षर एक छन्द है - यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः । ऋषियों ने वेदों में पद्य-गद्य दोनों तरह के छन्दों का प्रयोग किया है । जो छादित करे, ढँके वह छन्द है । यहाँ छन्द से मतलब है अक्षरों की गणना से बना माप या साँचा । पद्य छन्दों में अक्षरों की गणना निश्चित होती है जबकि गद्य-छन्दों में नहीं । ऋग्वेद में ७ प्रकार के पद्य-छन्दों का प्रयोग हुआ है - गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती । ऋग्वेद में ऋषियों ने त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग सब से अधिक किया है । इस छन्द में ऋग्वेद में ४२५३ ऋचाएँ हैं । यों प्रत्येक मन्त्र की पहचान के लिए तीन बातें जाननी आवश्यक हैं - ऋषि, देवता और छन्द । मन्त्रों का यज्ञ के निश्चित कर्मों में विनियोग कर्मकाण्ड का विषय है । जब मन्त्र रचे गए थे तब उनके कर्मकाण्ड में विनियोग की बात ऋषि-ऋषिकाओं के सामने कतई नहीं थी । यह बाद में याज्ञिक कर्मकाण्डियों द्वारा थोपी गई व्यवस्था है । ऋग्वेद का आत्मा, ऋग्वेद का उद्देश्य कर्मकाण्ड नहीं काव्य है । ऋग्वेद ऋषि-ऋषिकाओं का अन्तःस्फूर्त काव्य है । जैसे भूमि में से जल का फव्वारा छूटे वैसे ही ऋषि-ऋषिकाओं की अन्तःस्फूर्त- कविताएँ हैं, इनकी ऋचाएँ, इनके मन्त्र । ऋग्वेद की सुकोमल काव्यपदावली को कर्मकाण्ड के साथ जोड़ना कहीं-कहीं तो वैसा ही है जैसे किसी कोमल कन्या का उसकी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती से किसी कठोर के साथ पाणिग्रहण करवा देना । विनियोग का अर्थ है काम में लगाना, काम में उपयोग करना, काम में जोड़ना । मन्त्रों को यज्ञादि की किसी विधि में जोड़ना, प्रयोग करना ।

वेद हैं कविता में विज्ञान

ब्रह्माण्ड, नक्षत्र, सूर्य, वायु, जल, पृथ्वी इन प्राकृतिक शक्तियों की उत्पत्ति, इन प्राकृतिक शक्तियों से उत्पन्न सृष्टि और सृष्टि के पदार्थों के गुण-कर्म-भावों का ऋषि-ऋषिकाओं ने कवि

१. ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका, कपाली शास्त्री ।

बन कर छन्दों में वर्णन किया है। यों ऋषि-ऋषिकाओं का दुहरा व्यक्तित्व है। ये ऋषि-ऋषिकाएँ कवि भी हैं और वैज्ञानिक भी हैं। यथार्थ में ऋषि-ऋषिकाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं - कविता में विज्ञान - Science in Poetry.

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ऋषि मन्त्र में जिस विषय का वर्णन करता है, वह विषय देवता है तो सूर्य, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी ये देवता हैं तो स्त्री-पुरुष का रति कर्म[१] और सञ्ज्ञानम्[२] (सम्यक्ज्ञान) भी देवता हुईं, क्योंकि ऋषि-ऋषिकाएँ मन्त्रों में इनका भी वर्णन कर रहे हैं।

तीन भुवन और इनकी मुख्य देवताएँ

भुवन तीन हैं - द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी। इनको लोक या स्थान भी कहते हैं। द्यु का अर्थ है चमकीला, प्रकाशमान। जहाँ नक्षत्र, सूर्य चमक रहे हैं वह द्यु भुवन है। द्यु भुवन की मुख्य देवता है सूर्य। माला में सुमेरु की भाँति सूर्य तीनों भुवनों की देवताओं में अग्र है। ऋषि कुत्स आङ्गिरस इसे चलने वाले (जगत्) और स्थिर (तस्थुषः) सभी का आत्मा (शरीर) कह रहा है - 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। यही एकमेव भुवनत्रय का सर्वश्रेष्ठ निर्माता देव है। एक एव परो देवः सूर्यात्मा परमः पुमान्।[४] यही वह विष्णु है, जो अहर्निश तीन डग भर रहा है - द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर। इसके तीन डगों के तलवों में जो चिपकी धूल है, ऋषि मेधातिथि काण्व कहता है - 'तीनों भुवन इस धूल में समा रहे हैं'। इन तीनों भुवनों में इस धूल से कोई बाहर नहीं है। तीन डग अर्थात् तीनों भुवनों में व्याप्त विष्णु की किरणें -

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥[५]

यह विष्णु वह आदित्य है, जिसके मित्र, अर्यमा, भग, इन्द्र, वरुण, दक्ष और अंश ये सात स्वरूप हैं। जिनको घी टपकती हुई आहुतियों से संतृप्त करता हुआ ऋषि गृत्समद कूर्म प्रार्थना कर रहा है कि, 'हे आदित्यो! तुम मेरी ऋचाएँ सुनो।' मानो अपनी कविता सुने, कविता स्वीकार करे, इसके लिए ऋषि आदित्यों को उनकी रुचि की घी टपकती आहुतियों का उत्कोच (रिश्वत) देकर विवश कर रहा है, प्रेमवश कर रहा है और फिर उत्कोच से कौन वश नहीं होता है? -

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ ऋग्वेद २/२७/१।

यही विष्णु वह रश्मिवान् पूषा है। जो अपनी प्राणवती रश्मियों से तीनों भुवनों को पुष्ट कर रहा है। तीनों भुवनों का भरण-पोषण कर रहा है। तीनों भुवनों को धारण कर रहा है।[६]

सूर्य से ही सोम (प्राण) और ऊर्जा के अजस्र स्रोत अन्तरिक्ष और पृथ्वी की ओर प्रवाहमान् हो रहे हैं। जिनसे अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी सृष्टिवान् हो रहे हैं।

ऊपर द्यु भुवन है और नीचे है पृथ्वी भुवन। इन दोनों के बीच में है अन्तरिक्ष भुवन। अन्तरिक्ष भुवन की मुख्य देवता है वायु। इन्द्र, मरुद्गण और रुद्र भी अन्तरिक्ष की देवताएँ

(१) ऋग्वेद १/१७९ (२) ऋग्वेद १०/१९१/२-४/ (३) ऋग्वेद १/११५/१/ (४) ऋग्वेदभाष्य भूमिका, कपाली शास्त्री (५) ऋग्वेद १/२२/१७/ (६) ✓ पुष पुष्टो से, पुष पूषा-धारणे से पूषा। (७) ऋग्वेद २/२७/१।

हैं। मरुद्गण और रुद्र वायु के रूप हैं । जल, अग्नि और वायु की मिश्रित देवता है इन्द्र। यह वर्षाकारी देव है । हम खड़े हैं तो हमारे पैरों के तलवे मात्र पृथ्वी पर हैं । शेष पूरा शरीर अन्तरिक्ष में है । हम श्वासोच्छ्वास अन्तरिक्ष में ही करते हैं । हम वार्तालाप भी अन्तरिक्ष में ही करते हैं । यह वैदिक विज्ञान है ।

पृथ्वी भुवन की मुख्य देवता अग्नि है ।

तीनों भुवनों की देवताएँ अपने-अपने भुवनों में अलग-अलग पदार्थों की सृष्टि कर रही हैं और ये अपने-अपने पदार्थों को एक दूसरे में मिला करके भी सृष्टि कर रही हैं । अपने पदार्थों को एक-दूसरे में मिलाना यह प्रकृति में हो रहा, समष्टि में हो रहा सम्भोग है अर्थात् समान रूप से एक-दूसरे को भोगना है - 'यथा पृथिव्याः पर्जन्येन च वायवादित्याभ्यां च सम्भोगः । अग्निना चेतरस्य लोकस्य ।[१] सम्भोग प्रकृति का सहज कर्म है । इसी प्रक्रिया से प्रकृति एवं सृष्टि के चक्र गतिमान हैं ।

अध्ययन सम्पन्न करके शिष्य विदा ले रहा है तब गुरु उसे अन्तिम उपदेश देता है - 'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः[२] हे शिष्य ! विवाह करके प्रजा उत्पन्न करना । यों जो प्रकृति में है, ऋषि उसे कृति (सृष्टि) में भी देखना चाहते हैं । ऋषि प्रकृति को बराबर समझे हैं और वे उसीके अनुरूप कृति को भी ढालना चाहते हैं ।

द्यु के सूर्य के पश्चात् सृष्टि का दूसरा आधार है अन्तरिक्ष ।

सूर्य से प्राप्त सोम और ऊर्जा से सप्राण हुआ वायु अन्तरिक्ष में वातावरण (atmosphere) की सृष्टि कर रहा है । यही हमारा जीवनदायी प्राणवायु है । अन्तरिक्ष समुद्र है । समुद्र का द्रवण ही वातावरण है । समुद्र के सघन रूप मेघ हैं । मेघों में चमकती-कड़कती बिजली रसवती सरस्वती है । यह रस (जल) में रहती है, रस में चमकती है और रस में गर्जती है । अतः सरस्वती है । हमारी वाणी भी रस में रहती है अतः सरस्वती है । यह बीच के मध्यम लोक की वाणी है । अतः मध्यमावाक् है । यह इन्द्र का वज्र है । इन्द्र इसी विद्युत्-वज्र से मेघों को फाड़कर उन्हें बरसाता है । इस प्रकार यही अन्न-जल से सृष्टि का भरण-पोषण कर रही है । यों वेद की सरस्वती शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान की देवी है, सृष्टि की माता, सृष्टि की धात्री एवं सृष्टि की स्वामिनी है, पर पुराण की सरस्वती कवि की कल्पना है ।

ऋषि कवि हैं । ये शौर्य-प्रेमी हैं । अतः इन्होंने अन्तरिक्ष में भी युद्ध-भूमि की कल्पना की है । मेघों ने गायें चुरा कर बंद कर रखी हैं । वज्रबाहु इन्द्र मरुतों की सेना लेकर मेघों पर टूट पड़ता है और देखते ही देखते उन्हें फाड़कर धरती पर सुला देता है । यों इन्द्र के पराक्रम से गायें मुक्त हो जाती हैं । गायें हैं वर्षा की धाराएँ । पचासों कवि-ऋषियों ने अपनी मनोहारी एवं रोमांचक नवनवीन कल्पनाओं द्वारा इन्द्र-वृत्र (मेघ) के युद्ध का वर्णन किया है, जो वैदिक काव्य की अनुपम निधि है ।

द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी ये तीनों भुवन त्रिक हैं । सूर्य, वायु और अग्नि ये तीनों देवता

(१) निरुक्त, यास्क ७/२ (२) तैत्तिरीयोपनिषद् १/११

त्रिक हैं । ये दोनों ही सृष्टि-त्रिक हैं । ऋषि कवि हैं । ऋषि रतिप्रेमी हैं । ऋषि दीर्घतमा औचथ्य अपने एक रतिरूपक में उपर्युक्त दोनों त्रिकों द्वारा सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन कर रहा है । सृष्टि का पिता है सूर्य । सृष्टि की माता है पृथ्वी । प्रजा उत्पन्न करने के लिए सूर्य अन्तरिक्ष-योनि में अपने शुक्र का आधान कर रहा है और दुहिता अर्थात् दूर रहती पृथ्वी (क्योंकि बीच में अन्तरिक्ष है) उस अन्तरिक्षस्थ शुक्र को अपने गर्भ में धारण कर रही है -

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ऋग्वेद १।१६४।३३।

यही है सृष्टि की समष्टिगत शाश्वत प्रक्रिया और इसीका अनुकरण है व्यष्टि की शाश्वत सृष्टि-प्रक्रिया ।

ब्रह्माण्ड एक समष्टि है । इसमें एक ही शक्ति व्याप्त है । इसमें एक ही तरह का वीज व्याप्त है । इस वीज का फलन एक ही प्रक्रिया से हो रहा है -

ब्रह्माण्डस्यैको गोत्रः । शक्तिश्चैका । वीजमेकम् । फलनञ्च एकम् ।[१]

विशेषेण कार्यरूपेण अपत्यतया जायते यद्वा विशेषेण ईजते कुक्षिं गच्छति शरीरं वा तद् वीजम् । यद्वा वीजते गच्छति गर्भाशयम् इति तत् वीजम् । वीज ही शुक्र है । यही रेतस् है । यही जीवन- बीज है । यही गर्भाशय में जाकर फलित होता है ।

यों सृष्टि, प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड ये भी त्रिक हैं और एक दूसरे के साथ संयुक्त हैं ।

तीनों भुवनों में जितने देव हैं, वे अग्नि के ही रूप हैं - अग्निः वै सर्वा देवताः । द्यु का सूर्य-अग्नि ही सभी देवों का रूप है । यह शुचि अग्नि है । यह विश्वनर अग्नि है । अन्तरिक्ष का विद्युत्-अग्नि सूर्य-अग्नि का ही रूप है । यह पावक अग्नि है । यह तरल पदार्थों में और वायु में रहता है । यह भी विश्वनर अग्नि है । पृथ्वी का अग्नि इन दो विश्वनर अग्नियों से उत्पन्न होने के कारण वैश्वानर अग्नि है । यह पवमान अग्नि है । यह ठोस पदार्थों में रहता है । यह द्विमाता है । दो माताओं वाला है । एक माता है द्यु का विश्वनर सूर्य-अग्नि तथा दूसरी माता है अन्तरिक्ष का विश्वनर विद्युत्-अग्नि । यह वैश्वानर की दैविक उत्पत्ति है । दो पदार्थों एवं दो लकड़ियों के घर्षण से उत्पन्न होने के कारण भी पार्थिव अग्नि द्विमाता है । ऋषि कुत्स आङ्गिरस आश्विनौ की स्तुति करता हुआ अग्नि को द्विमाता कह रहा है -

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ॥ ऋग्वेद १।११२।४।

यह पार्थिव अग्नि की दो माताओं से भौतिक उत्पत्ति है । सृष्टि के सभी पार्थिव अग्नि द्विमाता हैं । स्त्री-पुरुष भी, माता-पिता भी दो अग्नियाँ हैं, अतः सन्तान भी द्विमाता हुई । यों समस्त सृष्टि द्विमाता है । यह वैदिक सृष्टि-विज्ञान है, अग्नि-विज्ञान है ।

---

१. श्रुतिदर्शनम् - श्रुति द्वारा दर्शन, वृन्दावन ५-१०-९३, प्रातः ५-३० डॉ. भ्रमरलाल जोशी

निघण्टु के दैवतकाण्ड (पंचम अध्याय) में पृथ्वी की ५२, अन्तरिक्ष की ६८ और द्यु की ३१ देवताएँ संगृहीत हैं । आचार्य यास्क ने 'निरुक्त' के ७ से १३ तक के ७ अध्यायों में वेद-मन्त्रों में प्रयुक्त देवताओं के उद्धरणों के साथ इन १५१ देवताओं का निर्वचन किया है । निरुक्त अर्थात् निर्वचन । निःशेषण कथन, स्पष्टीकरण । धातु, प्रत्यय इत्यादि के द्वारा देवता के नाम को पूरी तरह समझाना ।

देवता प्रकरण में हम यहाँ एक तथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं और वह यह कि ऋषियों ने जिस मंन्त्र को जिस निमित्त रचा है उसका उपयोग उसी निमित्त होना चाहिए । जैसे 'तत्सवितुर्वरेण्यं..'[१] इस सवितामन्त्र का सर्जन ऋषि विश्वामित्र गाथिन ने सभी की बुद्धियाँ कामों में लगे, इस प्रयोजन से किया है । सविता के भर्ग को धारण करें और हम अपनी बुद्धियों को कामों में लगाएँ । इस मन्त्र से यही हमें प्रेरणा लेनी है, पर प्रेरणा लेने के बजाय हम अकर्मण्य बनकर बैठे-बैठे जीवनभर इस मन्त्र का जप किया करें तो यह मन्त्र का दुरुपयोग है । यह हमारी बुद्धिहीनता है । जप की बात तो पुराणों के सूत करते हैं 'राम-राम रटो' पर यह सवितामन्त्र तो बुद्धियों को कामों में लगाकर कर्मण्य बनकर ऐश्वर्यों के शिखर लाँघने की प्रेरणा देता है । आश्चर्य है! मन्त्र वेद का है और मनुष्य विधि का प्रयोग पुराण के अनुसार कर रहा है ! कैसे होगा मनुष्य का दारिद्र्य दूर ! कैसे होगी मनुष्य की बुद्धि निर्मल ! उसे तो दीमक चाट जाएगी और चाट ही रही है ।

देवता से सम्बद्ध दो बातें मैं और कहना चाहता हूँ । एक यह कि देवता (विषय) का वर्णन हर ऋषि अपनी दृष्टि से अपनी शैली में अलग से कर रहा है । हर देवता को लेकर ऋषि के अपने अनुभव भी अलग-अलग हैं । अतः हर ऋषि के देवता-वर्णन की समीक्षा ऋषि के नाम के साथ अलग से होनी चाहिए । अग्नि का वर्णन वेदों में सौ से भी अधिक ऋषियों ने किया है तो उनमें से हर ऋषि के अग्नि-वर्णन की समीक्षा ऋषि के नाम के साथ अलग से ही होनी चाहिए। जैसे ऋषि मधुच्छदा का अग्नि-वर्णन, ऋषि गृत्समद शौनक का अग्नि-वर्णन, ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज का अग्नि-वर्णन इत्यादि । दूसरी बात यह कि जब समीक्षक किसी देवता (विषय), मन्त्र, सूक्त इत्यादि की समीक्षा करे तब इनसे सम्बद्ध ऋषि के नाम का वह अवश्य उल्लेख करे क्योंकि ऋषि ही इनका पिता है, इनका स्रष्टा है ।

यह दुःख की बात है कि आज तक मेरे अध्ययन में पूर्व-पश्चिम के जितने विद्वानों की समीक्षाएँ देखने में आई हैं, उनमें देवताओं (विषयों) की समीक्षा अलग-अलग ऋषियों के नाम से नहीं है । हर मन्त्र के साथ उसकी देवता और उसके ऋषि का नाम जुड़ा है । फिर यह उपेक्षा क्यों ? यह अपूर्णता खटकती है ।

'ऋग्वेद' शौर्य एवं शृङ्गार से विभूषित एक काव्यपुरुष

'ऋग्वेद' एक काव्यपुरुष है । काव्य इसका आत्मा है । इसका हृदय, इसका मन और इसकी समस्त इन्द्रियाँ काव्य हैं । इसकी शिराओं (ऋचाओं) में अजस्र काव्यरस प्रवाहमान हो रहे हैं । शौर्य एवं शृङ्गार पौरुष के ये दो भूषण हैं । ऋग्वेद-काव्यपुरुष इन्हीं दो भूषणों से परम विभूषित है ।

१. ऋग्वेद ३/६२/१० ऋषि विश्वामित्र गाथिन, देवता सविता, छन्द निच्यृत गायत्री ।

मानव जीवन मुख्यतः दो शक्तियों पर अवलंबित है - बल और काम । ये ही क्रमशः शौर्य एवं शृङ्गार हैं । उत्साह एवं रति इनके रोम-रोम में व्याप्त स्थायी भाव हैं । 'ऋग्वेद' के ऋषि-ऋषिकाओं ने अपनी रसवाहिनी ऋचाओं में इन रसद्वयों की झड़ी लगा दी है । इनमें भी ऋषि-ऋषिकाओं ने बल को साधन तो काम को साध्य माना है, क्योंकि प्रकृति सकाम है, यज्ञ सकाम हैं, कामनाओं में श्वास ले रहा संसार सकाम है । जन्म से मृत्यु-पर्यंत सभी कर्म सकाम हैं । निष्काम नाम की कोई अर्थहीन ग्रन्थी ही ऋषि-ऋषिकाओं के मस्तिष्क में नहीं है । ऋषि-ऋषिकाओं ने भरपूर कामनाओं में रहकर अन्न-जल की ही भाँति सहज ही काम को भोगा है ।

ऋग्वेद में शौर्य

ऋषि गृहस्थ थे । मेधावी थे । प्रज्ञावान् थे । योद्धा थे । धनाढ्य थे । जीवनकामी थे । सुखकामी थे । समाज के सिरमौर थे । राजा उनके सामने हाथ-बाँधे खड़े रहते थे । राजाओं के वे आश्रय थे । पुराणों के जैसे तूंबीवाले नहीं पर हाथ में धारदार परशु और मुँह में उज्ज्वल मन्त्रवाले थे । ऋषि की यही सही पहचान थी । किसी दुष्ट की आँख उठने से पहले ही उस आँख का जीवित न रहना ऋषि-ऋषिकाओं के स्वभाव में था ।

ऋषि विश्वामित्र गाथिन प्रचण्ड योद्धा था ।[१] इसके अश्वों की टाप मात्र से ही शत्रुओं के कलेजे मुँह को आते थे । एक ओर इसने ऋग्वेद के तृतीयमण्डल में ४८ सूक्त एवं ४६६ ऋचाएँ रची हैं तो दूसरी ओर इसने अकेले ने पचासों युद्ध खेले थे । अपनी ओजस्विनी वाणी में यह इन्द्र से कहता है - "हे इन्द्र, हम भरतवंशी बाणों की परवाह नहीं करते । हमारे अश्व शत्रुओं पर सदा आक्रामक रहते हैं । हम शत्रु से कभी मेल नहीं करते पर उसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकते हैं । परशु की धार तेज करने के लिए जैसे उसे तपाया जाता है, वैसे ही हम अपने शत्रु को बड़ी प्रचण्डता से तपाते हैं । चूल्हे पर चढ़ी हाँडी जैसे झाग उगलती है वैसे ही हमारे ताप से शत्रु व्याकुल हो कर मुँह से झाग उगलते हैं ।[२]

ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज का युवा पुत्र ऋषि पायु अजेय योद्धा था । युद्ध के लिए इसकी भुजाएँ फड़कती थीं । वारशिखों से पराजित राजा अभ्यावर्तिन चायमान और सृञ्जय का पुत्र प्रस्तोक सहायता की कामना से ऋषि भरद्वाज की शरण में आए ।[३] ऋषि ने अपने वीर पुत्र ऋषि पायु को राजाओं को विजयी बनाने का काम सौंपा । युद्ध में प्रयाण करने से पहले अपने आयुधागार में जाकर विजय की कामना से ऋषि पायु आयुधों को अभिमंत्रित कर रहा है । वह ऋचा द्वारा धनुष को अभिमंत्रित करता हुआ कहता है - 'अनुकूल मनवाली प्रिया जैसे अपने प्रिय की बाहुओं में आती है वैसे ही धनुष पर बाण चढ़ाते समय धनुष की दोनों ओर की कोटियाँ योद्धा के पास आती हैं । माता जैसे अपने पुत्र को अंक में भरती है वैसे ही धनुष पर बाण चढ़ाते समय धनुष की दोनों ओर की कोटियाँ योद्धा को अपने वत्सल अंक में भर लेती हैं' ।[४] यों काम को स्वस्थतापूर्वक ऋषि पायु जैसा वीर्यवान् युवा योद्धा ही

---

१. अप्सरा मेनका का प्रेमी पुराणकथा का विश्वामित्र वैदिक ऋषि नहीं हैं । पौराणिक सूतों ने अपनी कथाओं के पात्रों के नाम वैदिक ऋषियों के नाम पर रखे हैं । इससे भ्रम बना रहता है । २. ऋग्वेद ३/५३/२२-२४ ३. शौनकीय बृहद्देवता ५/१२४ ४. ऋग्वेद ६/७५/५

भोग सकता है और ऐसा ही वीर्यवान् योद्धा अपने उज्ज्वल कर्मों से मां की कोख को उज्ज्वल कर सकता है। ऋषि पायु जैसे योद्धा के लिए रणाङ्गन प्रिया का ऊष्म आलिंगन है और मां की वत्सल गोद है।

ऋषि पायु भारद्वाज का यह आयुधाभिमन्त्रणसूक्त (६/७५) मिट्टी में भी जान डाल देता है। मुर्दे को भी खड़ा कर देता है।

ऋषि वामदेव गौतम का जीवन एक ओर जीवन-निर्वाह के लिए वृत्ति (जीविका) के न होने से ऐसे घोर संकट में बीता कि जीने के लिए इसे कुत्ते की आन्तें खाने पड़ीं- 'अवर्त्या शुनं आन्त्राणि पेचे[1] और मुट्ठी भर अन्न के लिए इसने अपनी पत्नी को अपनी आँखों के सामने अपमानित होते देखा था - अपश्यं जायाममहीयमानाम्[2] तो दूसरी ओर यह ऐसा प्रचण्ड योद्धा था कि युद्धों में यह आयुधों से खेलता था - पृतनासु प्रक्रीळन्[3] तो तीसरी ओर यह ऐसा मेधावी ऋचा-स्तोता एवं हविर्दाता ऋषि था कि इस पर प्रसन्न होकर एक दिन, स्वयं इन्द्र (श्येन) इसके लिए मधु (सोम) लाया - अधा मे श्येनो मध्वा जभार।[4] इस ऋषि का कवित्व देखिए। यह ऋग्वेद चतुर्थ मण्डल का द्रष्टा ऋषि है। इसने अकेले ने चतुर्थ मण्डल के ५८ में से ५५ सूक्त एवं ५८९ में से ५५९$^{1}/_{2}$ ऋचाएँ रची हैं। इसके जीवन में कितने संघर्षों का समन्वय हुआ है ? कैसी संघर्षमयी, कैसी अभावग्रस्त एवं कैसी हृदयद्रावक आत्मकविता है एक विवश कवि की, एक समर्थ ऋषि की - अपि ग्रावाः रोदन्ति [5]। अरे ! इसकी कथा-व्यथा सुनकर तो पत्थर तक रो पड़ते हैं।

ऋषि वव्रि आत्रेय की आकाश को चीर देने वाली गर्वोक्ति सुनिए - 'युवाकाल में मैं पल-पल अपने बल को जुटाता था। शत्रुओं को ढूँढ़-ढूँढ़कर उन्हें युद्ध के लिए ललकारता था और लोहे जैसी सुदृढ़ शत्रु-पुरियों में घुसकर उन्हें मिट्टी में मिला देता था - जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति। आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥[6]

वैदिक काल में स्त्रियाँ चूड़ियाँ पहनकर घर की शोभा मात्र नहीं थीं किन्तु वे युद्धोन्मादिनी, युद्धकुशल प्रचण्ड रणचण्डिकाएँ थीं। ऋषि भार्म्याश्व मुद्गल के पशु दस्यु चुरा ले गए। ऋषि-पत्नी मुद्गलानी रथारूढ हो, शत्रुओं से लोहा लेने अकेली ही निकल पड़ी और शत्रुओं को बुरी तरह खदेड़कर अपने पशु उनसे वापस छीन लाई। अपनी वीर पत्नी के शौर्य की भूरि-भूरि स्तुति करता हुआ ऋषि भार्म्याश्व मुद्गल उसे इन्द्रसेना के बिरुद से विभूषित करता है। [7] वीराङ्गना मुद्गलानी के स्तवन का यह सूक्त[8] महिषासुरमर्दिनी महाकाली एवं वीराङ्गना रणचण्डी महारानी झांसी का स्मरण दिलाता है।[9] तालियों की गड़गड़ाहट मात्र से फूलने वाले इसे अवश्य पढ़ें।

१. ऋग्वेद ४/१८/१३
२. ऋग्वेद ४/१८/१३
३. ऋग्वेद ४/४१/११
४. ऋग्वेद ४/१८/१३
५. उत्तररामचरित, भवभूति
६. ऋग्वेद ५/१९/२
७. रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥ ऋग्वेद १०/१०२/२
८. ऋग्वेद १०/१०२
९. चण्डीपाठ, प्रथम माहात्म्य

ऋग्वेद में शृङ्गार

कामोन्माद को शृङ्ग कहते हैं और इसकी प्राप्ति के लिए की गई चेष्टाएँ और इसकी प्राप्ति को शृङ्गार कहते हैं। आचार्य भोजदेव एकमात्र शृङ्गार को ही रस मानते हैं क्योंकि इसमें ही केवल रसत्व है – शृङ्गारमेव रसनाद् रसमामनामः ।[१]

गुजरात के एक दैनिकपत्र में पढ़ा था – "मनुष्य पालने से चिता तक काममय रहता है।" कितना घोर यथार्थ है जीवन का।

काम मन में उत्पन्न प्रथम संवेग है, प्रथम रेतस् है, प्रथम वीर्य है, जो सृष्टि के लिए आतुर है। काम की इस आतुरता को ऋषि परमेष्ठि प्रजापति ने कवि बनकर मनीषा (मन की इच्छा) द्वारा अनुभव करके इसके सुख को भली भाँति जाना –

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ऋग्वेद १०/१२९/४

यों प्रकृति की सकामता से सृष्टि हो रही है और सृष्टि की सकामता से सृष्टि आगे बढ़ रही है। यही प्रकृति एवं सृष्टि के फलन का एवं संवर्धन का रहस्य है। इसी लिए ऋषि-ऋषिकाओं ने बल को साधन और काम को साध्य माना है।

ऋग्वेद में क्या प्रकृतिचित्रण, क्या देवस्तुतियाँ, क्या देवचित्रण, क्या यज्ञविधान, क्या जीवनचित्रण, क्या ऋषि-ऋषिकाओं का आत्मचित्रण सभी में हम काम की ऊष्मा को व्याप्त पाते हैं। जैसे जल से वनस्पति हरी-भरी एवं सघन रहती है वैसे ही ऋग्वेद के मनोहारी अनेक अंश कामजल से शस्य-श्यामल हैं।

'बृहदारण्यकोपनिषद्' में शिष्य शाकल्य काम की व्याप्ति, काम की उद्दीप्तता एवं काम की प्रबलता के संबन्ध में आचार्य याज्ञवल्क्य से प्रश्न कर रहा है और आचार्य उत्तर दे रहे हैं – "अयं काममयः पुरुषः। अध्यात्ममपि काममय एव। तस्य का देवतेति, स्त्रियः इति होवाच। स्त्रीतो ही कामस्य दीप्तिर्जायते।[२] अर्थात् पुरुष काममय है। इसका मन एवं इसकी समस्त इन्द्रियाँ काममय हैं। काम की देवताएँ कौन हैं ? तो स्त्रियाँ ही काम की देवताएँ हैं। स्त्रियों से ही काम उद्दीप्त होता है।

'ऋग्वेद' का ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप कहता है कि ऊखल-मूसल से सोम पीसा जा रहा है और चारों ओर खड़ी स्त्रियाँ इस क्रिया से रतिकर्म की शिक्षा ले रही हैं –

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ऋ. १/२८/३।

कितना स्पष्ट एवं अजुगुप्सित है काम, वैदिक युग का।

ऋषिका लोपामुद्रा रति के लिए अपने पति ऋषि अगस्त्य को उद्दीप्त कर रही है और फिर कामोन्मादी ऋषि अगस्त्य बड़ी ही प्रचण्डता से ऋषिका लोपामुद्रा के साथ रतिक्रीडा करते हैं और इससे प्रसन्न एक ब्रह्मचारी शिष्य सोमपान करता है। ऋग्वेद के इस १/१७९ सूक्त की देवता भी रति है।

१. शृङ्गारप्रकाश ६/७ २. बृहदारण्यकोपनिषद् ३/९/११/ व्याख्या आचार्य शंकर

ऋषिका रोमशा ऋषि भावयव्य को अपना काम-अंग दिखाकर कह रही है - 'गांधार की भेड़ जैसे कोमल रोमवाला मेरा काम-अंग सघन रोमवाला है। तू इसका स्पर्श कर - 'उपोप मे परा मृश....'[१] फिर कामोत्तेजित ऋषि भावयव्य नकुल जैसे नकुली को आलिंगन में लेता है वैसे प्रगाढ़ आलिंगन में लेकर रति करता है - कशीकेव जङ्गहे ....[२]

ऋग्वेद का रसिक ऋषि कवि श्यावाश्व आत्रेय अश्वारोही मरुतों के सौंदर्य का वर्णन कर रहा है। पीठ पर कशाओं (चाबुक) की मार ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही हैं, त्यों-त्यों गति पकड़ते अश्वों की पिछली टाँगें रतिकाल में उत्तरोत्तर प्रचण्ड प्रहारों से विस्तृत होते स्त्री-जघन की भाँति विस्तृत होती जा रही हैं -

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः। पुत्रकृथे न जनयः॥ ऋग्वेद ५/६१/३।

इससे यह भी प्रतीत होता है कि ऋषि श्यावाश्व आत्रेय एक कुशल अश्वारोही, एक वीर योद्धा एवं अश्वविद्या का ज्ञाता था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अश्व वैदिक काल का एक परम उपकारक पशु था। युद्ध में, रथ में, भार-वहन में, आरोहण में, वस्तुओं के लेन-देन में, सिक्के के रूप में, यहाँ तक कि कन्याओं के आदान-प्रदान में भी अश्व का उपयोग होता था।[३] ऋषि दीर्घतमा औचथ्य तो अपने अश्वदेवतासूक्त में अश्व को धरती का इन्द्र कह रहा है।[४] अश्व की महत्ता के लिए पढ़िए ऋग्वेद १/१६२-१६३ सूक्त, ऋषि दीर्घतमा औचथ्य। ये दो सूक्त अश्वमेध प्रकरण के हैं और ऋग्वेद में ये अद्वितीय हैं।

दाम्पत्यसुख की प्राप्ति के लिए एवं रतिशिक्षा के लिए ऋषिका काक्षीवती घोषा अश्विनौ से प्रार्थना कर रही है - ऋग्वेद १०/४०।

ऋषि मैत्रावरुणि अगस्त्य इन्द्र को आहुतियाँ प्रदान करता हुआ कहता है - "मीठे दूध के लिए लोग जैसे स्त्री के स्तनों को पुष्ट करते हैं वैसे ही हे इन्द्र ! हम, हवि-अन्न की आहुतियों से तुझे पुष्ट करते हैं। तू हमें धन दे" - त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा.... स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः॥ ऋ. १/१६९/४।

युद्ध के लिए प्रयाण करने से पहले युवा ऋषि पायु भारद्वाज धनुष की प्रत्यंचा को अभिमन्त्रित करता हुआ कहता है - 'जैसे प्रियतमा निकट आकर अपने प्रिय को आलिंगन में लेकर उसे कान में कुछ मधुर कहती है वैसे ही यह प्रत्यंचा भी मेरे कान में कुछ मधुर कह रही है। जैसे सम्भोग-काल में प्रिया सुखदायी अव्यक्त शब्द करती है वैसे ही यह प्रत्यंचा भी सुखकारी अव्यक्त शब्द कर रही है। योद्धा को यह संग्राम में विजय दिलाती है। "ऋग्वेद ६/७५/३।

ऋषि युद्ध जैसे विषय को भी किस तरह से काम के साथ सहज ही जोड़ देते हैं। इससे स्पष्ट है कि काम एवं युद्ध दोनों उनके जीवन में सहज रहे हैं। दोनों ही कर्म समान रूप से उनके स्वभाव में रहे हैं।

---

१. ऋग्वेद १/१२६/७ २. ऋग्वेद १/१२६/६

३. अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनुभगः कनीनाम्॥ ऋग्वेद १/१६३/८।

४. हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्॥ ऋग्वेद। १/१६३/९

कालिदास के मेघदूत के कान्ताविरही यक्ष की भाँति किसी प्रेमदग्ध युवा ऋषि का जीवन पढ़ना हो तो ऋग्वेद पञ्चम मण्डल के द्रष्टा प्रेम-पेशल मधुर ऋषि श्यावाश्व आत्रेय को पढ़िए। हृदय में लगी प्रिया की आग ने इसे ब्रह्मचारी (ऋचापाठी)[१] से ऋषि (मन्त्रस्रष्टा) बना दिया था। पर्वत शिखरों पर आषाढ़ के श्याम मेघों को वप्रक्रीड़ा करते देखकर इसके भीतर प्रियाविरह की जो आग सुलग रही थी, वह मरुतों की स्तुति में ऋचाएँ बन फूट पड़ीं। यों श्यावाश्व ब्रह्मचारी से ऋषि बन गया और फलस्वरूप इसे प्रिया मिल गई। कालिदास को भी निश्चित ही ऐसी ही किसी आग ने कवि बनाया होगा - 'आह से उपजा होगा गान। बही होगी कविता अनजान।[२]' बात यह थी कि एक यज्ञ के अवसर पर श्यावाश्व के पिता ने कन्या के पिता से जो यजमान था, अपने पुत्र के लिए कन्या का हाथ मांगा। कन्या के पिता का संकल्प था कि वह अपनी कन्या का हाथ किसी ऋषि को ही देगा। ब्रह्मचारी युवा श्यावाश्व ने कन्या को मीठी नज़र से आँख भर देख लिया था। यों प्रिया की तीव्र कामना ने ही श्यावाश्व के हृदय में कविता के कोमल अंकुर उत्पन्न कर दिए थे। ऋषि श्यावाश्व ऋग्वेद का अद्वितीय मरुत् स्तोता कवि है। यह मरुतों के प्रति ऐसा जबर्दस्त पक्षपाती है कि इसने मरुतों को राजा और इन्द्र को उनका सहायक चित्रित किया है - इन्द्रवान् मरुद् गण, नहीं कि मरुत्वान् इन्द्र।[३]

यों प्रकृति में जिस प्रकार सूर्य के साथ सूर्या, सूर्य के साथ पृथ्वी, इन्द्र के साथ इन्द्राणी, रुद्र के साथ रुद्राणी, अग्नि के साथ अग्न्यायी, अश्विनौ के साथ उषा कामभाव से संलग्न हैं, उसी प्रकार ऋषि-ऋषिकाओं का जीवन भी कामसंलग्न रहा है। विवस्वान् (सूर्य) की पत्नी सरण्यू अश्वा बनकर भागी तो विवस्वान् भी अश्व बनकर उसके पीछे हो लिया और फलतः दो यमजपुत्र अश्विनौ उत्पन्न हुए।[४] वर्णन प्रकृति का है। सूर्य अश्व है। उसकी किरणें अश्वा हैं। इनसे जो दिन-रात हो रहे हैं, ये ही दो अश्विनौ हैं। पर ऋग्वेद के कवि ऋषि यामायन ने कैसे मनोहर कामरूपक द्वारा इस प्रसंग को प्रस्तुत किया है![५] क्योंकि कवि के हृदय में काम है। जैसा भीतर होता है वही वैसा ही बाहर भी प्रकट होता है - वाणी द्वारा, व्यवहार द्वारा और कर्म द्वारा। यह सनातन मनोविज्ञान है।

ऋग्वेद के अध्ययन से हमें यह स्पष्ट लगा है कि ऋषि-ऋषिकाओं ने काम को पूरी तरह भोग करके, काम का भली भाँति अनुभव करके उन्होंने ब्रह्माण्ड, प्रकृति, सृष्टि एवं जीवन के रहस्यों को जाना था। जो पिण्ड में है वह ब्रह्माण्ड में है। जो व्यष्टि में है वह समष्टि में है। जो कार्य में है वह कारण में है। ऋषि दीर्घतमा ने सूर्य एवं पृथ्वी के कामरूपक द्वारा सृष्टि की प्रक्रिया का जो विज्ञानसम्मत वर्णन किया है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।[६]

भारत की विरक्तपंरपरा ने जगत् को मिथ्या कहकर, जगत् के रसों को नकार कर, एक ओर

१. ब्रह्म अर्थात् मन्त्र। ब्रह्मचारी अर्थात् मन्त्रपाठी। वैदिककाल में ब्रह्मचारी का अर्थ मन्त्रपाठी होता था। आगे अवैदिक युग में ब्रह्मचारी का अर्थ स्त्री से संपर्क न करने वाला पुरुष हो गया।

२. कवि सुमित्रानंदन पंत।

३. ऋग्वेद ५/५२-६१, देवता मरुद्गण। ऋषि श्यावाश्व ने ११८ ऋचाएँ रची हैं। इनमें से १०९ ऋचाएँ मरुतों पर हैं, ४ ऋचाएँ शशीयसी पर, ३ रथवीति, १ तरंत, १ पुरुमीळ्ह पर हैं। ये चारों व्यक्ति ऐतिहासिक हैं।

४. शौनकीय बृहद्देवता ७/१-७।

५. ऋग्वेद १०/१७/१-२। इन ऋचाओं में यम-यमी की उत्पत्ति का भी वर्णन है।

६. ऋग्वेद - १/१६४/३३

जहाँ इसने भारतीय जन-जीवन को दीन-दुर्बल, पौरुषहीन, अकर्मण्य, परलोक-मोक्षपरक एवं निर्वीर्य बनाया है वहाँ दूसरी ओर इसने काम को हेय बताकर भारतीय जीवन को क्लैब्य (नपुंसकता) की दिशा में खूब दूर तक घसीटा है। राजस्थानी में एक कहावत है - .'धणी मारी तो थोड़ी पण घसीटी घणी।' अर्थात् पति ने पीटा तो कम पर चुटिया पकड़कर घसीटा खूब, जीवन भर।

आदर्श वैदिक नारी शशीयशी

सम्मान से प्रसन्न हुआ ऋषि श्यावाश्व आत्रेय अपने यजमान की पत्नी की स्तुति कर रहा है - 'अरे, यह शशीयशी, अपने पति की भूख, प्यास और रतिकामना को ठीक-ठीक जानती हुई, तत्काल इनका उपचार करती रहती है -

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् ॥ ऋग्वेद ५/६१/७

इस शशीयशी का मन देवों में भी है। यह प्रतिदिन यज्ञ करती है - देवत्रा कृणुते मनः ॥ ऋग्वेद - ५/६१/७।

वैदिक काल की इस वरारोहा, वरवर्णिनी, उत्तमा सन्नारी, शशीयशी के आदर्श को अपने जीवन में स्वीकार कर लेने के बाद किसी भी गृहस्थ नारी का क्या कर्तव्य शेष रह जाता है? 'अखिलं मधुरम्', उसका तो सबकुछ मधुर हो जाता है।

शशीयसी के जीवन से यह भी स्पष्ट हो रहा है कि वैदिक काल में नारियाँ पुरुषों की ही भाँति यज्ञ करती थीं।

ईर्ष्या-द्वेष-द्रोहमय ऋषिजीवन

साहित्य समाज का दर्पण होता है और साहित्य व्यक्ति के मन का भी दर्पण होता है। वह जीवन की कविता होता है। यों वेद भी जीवन की कविता है। ऋषि-ऋषिकाओं के जीवन में शौर्य, काम जैसी जीवनपरक वृत्तियाँ थीं तो उनमें ईर्ष्या-द्वेष, द्रोह, कपट,-षड्यंत्र जैसी वृत्तियों का होना भी स्वाभाविक है क्योंकि आखिर मनुष्य मिट्टी का जो पुतला है। इस संबन्ध में हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

'ऋग्वेद' का सर्वाधिक ऋचाओं का स्रष्टा ऋषि है मैत्रावरुणि वसिष्ठ। यह सप्तम मण्डल का द्रष्टा है। इसने अकेले ने इस मण्डल में १०४ सूक्तों में से १०२ सूक्त एवं ८४१ ऋचाओं में से ८३४ ऋचाएँ रची हैं।

इसके क्रान्त कवित्व ने, इसके विज्ञानवान् ऋषित्व ने, इसके कामदुध पौरोहित्य ने और इसके वरेण्य सामाजिक प्रभाव ने ही इसके जीवन में ईष्या-द्वेष-द्रोह-षड्यंत्र-कपट के ऐसे विषाक्त काँटे बिछा दिए कि इसका साँस लेना भी दूभर हो गया। हाहाकार भरा इसका हृदय चीत्कार कर उठा-"मैं कपटी यातुधान (राक्षस) होऊँ और मनुष्यों का घातक होऊँ तो मेरी अभी मृत्यु हो जाए। नहीं तो मुझे लांछित करने वाला अपने वीरपुत्रों के साथ अभी नष्ट हो जाए -"

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ ऋग्वेद - ७/१०४/१५।

अन्तस्तल को भेदकर हाहाकार, शाप, अभिशाप यों ही नहीं उठते हैं। जब सत्य दग्ध होते-

होते अपनी चरम दशा को पहुँचता है तब ज्वालामुखियों का विस्फोट होता है। धरती काँपती है। पहाड़ थर्राते हैं। आसमान से उल्काएँ बरसती हैं और धूमकेतुओं की ज्वालावान् जीभें ग्रह-नक्षत्रों को लीलने ब्रह्माण्ड में लपलपाने लगती हैं।

ऋग्वेद में प्रकृति-वर्णन

पूर्व कृति प्रकृति है और इसकी कृति है सृष्टि। प्रकृति कारण है और सृष्टि कार्य। प्रकृति सृष्टि की मां है, सृष्टि की धात्री है और सृष्टि की स्वामिनी है। ऋषि दीर्घतमा औचथ्य एक रूपक में सूर्य को एक महान् वृक्ष कह रहा है। सूर्य रश्मियाँ इस महान् वृक्ष पर रहने वाले और मीठा जल पीने वाले ऐसे सुनहरे पक्षी हैं जो अपने ही जैसे अनन्त सुनहरे पक्षियों को अहर्निश जन्म दे रहे हैं। ऋषि कहता है कि जो इस महान् वृक्ष को नहीं जानता है उसका जीवन व्यर्थ है -

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्ये दाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥ ऋग्वेद १/१६४/२२।

जो मीठा जल पीने वाले अनन्त सुनहरे पक्षी अहर्निश जन्म ले रहे हैं, वही हमारी यह सृष्टि है। तीनों भुवन एक वृक्ष है। इसका पिता सूर्य है और यह सूर्य ही इस वृक्ष का मधुर फल है। ऋषि कहता कि सृष्टि के पिता इस सूर्य को जानो। यही सृष्टि का सर्वस्व है। कैसी सारगर्भा मनोहर कविता है। प्रकृति एवं जीवन दोनों ही इसमें पुष्प-गन्ध की भाँति गुंफित हैं।

आचार्य सायण यजुर्वेद को जैसे भित्ति (दीवार) और ऋग्वेद-सामवेद को उस पर बना चित्र कहता है वैसे ही हमारी दृष्टि से प्रकृति वह भित्ति (दीवार) है जिस पर ऋषि-ऋषिकाओं ने जीवन के मनोहारी चित्र अंकित किए हैं। यों ऋग्वेद में प्रकृति चित्रपट है, ऋषि-ऋषिकाएँ चितेरे हैं और जीवन है चित्र।

ऋग्वेद के सभी मण्डलों का प्रारंभ प्रकृति-वर्णन से हो रहा है। प्रथम से सप्तम तथा दशम मण्डल का प्रारंभ अग्नि की स्तुतियों से, अष्टम का इन्द्र एवं नवम का सोम की स्तुतियों से प्रारंभ हो रहा है। ऋग्वेद के अध्ययन से इतना स्पष्ट हुआ है कि ऋषि-ऋषिकाओं ने प्रकृति और सृष्टि की नाभि को, प्रकृति एवं सृष्टि की नाड़ि को भली भाँति समझ लिया था। अग्नि, इन्द्र एवं सोम ये ही त्रिक प्रकृति एवं जीवन की नाभि एवं प्रकृति एवं जीवन की धग्-धग् करती नाड़ियाँ हैं। इसीलिए ऋग्वेद में सर्वाधिक सूक्त इन तीनों पर हैं - इन्द्र पर २५०, अग्नि पर २०० एवं सोम पर १२०। ये तीनों ही क्रमशः अन्तरिक्ष, पृथ्वी एवं द्यु के देव हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इन्द्र है, फिर द्वितीय स्थान अग्नि का एवं तृतीय सोम का है। अग्नि के तीन रूप हैं - द्यु में सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत्-अग्नि एवं पृथ्वी में वैश्वानर-अग्नि। इनमें भी सूर्य सभी अग्नियों का जनक है। सोम शुक्र है, वीज है, जिससे सृष्टि होती है। ऋषि नृमेध आङ्गिरस कहता है कि यह जीवनदायी मादक सोम सूर्य के द्वारा अन्तरिक्ष के पात्र में छोड़ा जाता है। अर्थात् सूर्य अपने शुक्र का अन्तरिक्ष-योनि में आधान करता है -

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि। पवित्रे मत्सरो मदः॥ ऋग्वेद ९/२७/५।

फिर इसी सोम को पृथ्वी अपने गर्भ में लेकर सृष्टिवती होती है।

भुवनमोहिनी उषा

ऋषि कुत्स आङ्गिरस ऋग्वेद का एक उत्तम उषा-स्तोता ऋषि है । पूर्व में उषा के प्रकाश को देख कर यह हर्ष-विभोर होकर ऋचा-गान करने लगता है - इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्[१] "अरे, देखो, यह द्यु की ज्योतियों में सर्वश्रेष्ठ ज्योति उषा आ रही है" और फिर २० त्रिष्टुप् छन्दों में ऋषि ने उषा के परमलावण्य और अनुपम सौन्दर्य का अद्‌भुत स्तवन किया है ।

उषा द्यु की पुत्री है । यह भुवनमोहिनी है । इसने अपने अम्लान लावण्य से तीनों भुवनों को मोहित कर रखा है । इसके नवनवीन अनन्त रूप हैं । जैसे कोई प्रिया अपने प्रिय को अपने ऊष्म आलिंगन में लपेट ले वैसे ही उषा ने अपनी प्रभा के आश्लेष में तीनों भुवनों को लपेट रखा है : 'उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥' ऋग्वेद १/११३/४ ॥

कवि बिहारी कहता है कि तिलक से नारी का सौंदर्य अगनित बढ़ जाता है -

कहत सबै बेंदी दिये, आंक दस गुनो होत ।
तिय ललाट बेंदी दिये, अगनित होत उदोत ॥ बिहारी सतसई ।

उषा भी सृष्टि की माता अखण्ड सौभाग्यवती प्रकृति के भाल का वह कुंकुम तिलक है जो उसके सौंदर्य को शत-शत गुना बढ़ा रहा है । गुजरात का एक आधुनिक कवि अविनाश व्यास तो उषा को मां प्रकृति की कुंकुममंडित मांग कह रहा है, जिसका कुंकुम का एक कण गिरा और वही सूरज बन गया-'मांडी तारुं कंकु खर्युं ने सूरज ऊग्यो' । कवि अविनाश व्यास के लोक गीत की यह पंक्ति ऋग्वेद की ऋचाओं का स्मरण कराती है और ऋग्वेद की ऋचाएँ भी तो यथार्थ में लोक गीत ही हैं।

ऋग्वेद के कवि द्यु की ज्योतियों मे सर्वश्रेष्ठ ज्योति एवं द्यु की पुत्री उषा को विभावरी, सुनृतावरी, सुम्नावरी, सूनरी, सुनृतावती, सुनृता, श्वेत्या, भास्वती, ओदती, अरुषी, चित्रामघा, अर्जुनी इत्यादि बिरुदों से विभूषित कर रहे हैं ।

ऋषि कुत्स आङ्गिरस उषा को उस महनीया धेनु की उपमा दे रहा है जिसका बछड़ा सूर्य उसके थनों को चाटता हुआ सतत उसके पीछे लगा हुआ है - 'रुशद्वत्सा' (ऋग्वेद १/११३/२) ऋषि कुत्स आङ्गिरस के ऋग्वेद के १/११३, इस उषासूक्त को सौंदर्यप्रेमी अवश्य पढ़ें ।

ऋग्वेद में लगभग २० सूक्तों में ऋषियों ने उषा के सौंदर्य का स्तवन किया है । किसी रसिक ऋषि ने इसका सुस्तनी वक्षदर्शिका नर्तकी (१/९२) किसी ने कन्या, किसी ने सद्यः स्नाता रमणी (५/८०) किसी ने सर्वप्राणियों की माता (४/५२), किसी ने सूर्य की प्रेयसी (१/९२), किसी ने ऐसी मोहक रमणी कि जिसके लावण्य से मोहित हो पुरुष (सूर्य) उसे पाने के लिए पीछा कर रहा है, (१/११५), किसी ने अश्विनौ की स्त्री-मित्र (४/५२) इत्यादि अनेक-सम्मोहक रूपों में उषा का स्तवन किया है ।

१. ऋग्वेद १/११३/१ ।
२. ऋग्वेद १/११३ ।

द्यु और पृथ्वी के लिए दूध दुहाती वर्षा-धेनु

ऋषि कुत्स आङ्गिरस के जैसे ही रूपक द्वारा ऋषि दीर्घतमा औचथ्य भी वर्षा को धेनु कह रहा है। वर्षा-धेनु अपने बछड़े को दूध पिलाने मन के जैसे वेग से भागी आ रही है। यह भूखा बछड़ा सृष्टि है। यह धेनु रांभ रही है। मेघों की गर्जना ही रांभना है। इसने द्यु और पृथ्वी दोनों के लिए अपना दूध दुहाया है। पृथ्वी का इसके दूध (जल) से अन्नवती होना पृथ्वी के लिए दूध दुहाना है। अन्न के हवि से द्यु का पुष्ट होना द्यु के लिए दूध दुहाना है। ऋषि इस महनीया धेनु के सौभाग्य की अभिवृद्धि की कामना कर रहा है -

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ऋग्वेद १/१६४/२७ ।

कैसी कविता है! कैसा विज्ञान है! उपमा के लिए उपमेय ढूँढ़कर कहाँ से लाएँ? क्योंकि यह धेनु स्वयं ही मध्यमावाक्, रसवती सरस्वती है। सभी वाणियों एवं उपमाओं की यह मां है। बस, हम इतना कहें कि ऐसी कविता केवल ऋषि ही कर सकता है।

वर्षा काल है। बरसते श्याम मेघ धरती से लगे हैं। ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ मरुतों को आहुतियाँ प्रदान कर रहा है। वह इस वर्षा के मनोहर दृश्य से रोमांचित हो उठता है और भाव कविता बन बहने लगते हैं - "अरे, देखो, ये मरुत् नीली पीठ वाले हंसों पर बैठ आहुतियाँ स्वीकार करने हमारे ही यज्ञगृह में उतर रहे हैं" -

सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ॥ ऋ. ७/५९/७ ।

राजाओं की भाँति रत्नालंकारों से विभूषित मरुत् जिन पर सवार हैं ऐसी चंचल चितकबरी हिरनियाँ आसमान में निर्द्वंद्व कुलांचें भर रही हैं और इधर ऋषियों के मन कविता में कुलांचें भर रहे हैं। प्रकृति के साथ मधुमती-भूमिका में ऋषियों का कैसा शैशवी साधारणीकरण है। ये ऋषि गजब के कवि हैं। ऐसे अनगिनत मनोहारी दृश्यों से ऋग्वेद भरा पड़ा है।

ऋग्वेद में प्राकृतिक सौंदर्य के दो ही विषय ऋषियों को सर्वाधिक आकर्षित कर रहे हैं और वे हैं उषा और वर्षा। वर्षा रानी के सौंदर्य पर तो ऋग्वेद की सर्वाधिक ऋचाएँ निछावर हैं और क्यों न हो निछावर? क्योंकि सौंदर्य के उपकरण भर-भर झोली यही तो बाँट रही है सृष्टि को और यही निहाल कर रही है सृष्टि को। लगता है वर्षा पृथ्वी पर निछावर है तो ऋषियों के हृदय वर्षा पर। कैसा अद्भुत है परस्परोपकारित्व!

ऋग्वेद में सृष्टि-वर्णन

ऋग्वेद में सृष्टि-वर्णन एक स्वतंत्र शोध का विषय है। ऋग्वेद कविता है और कविता के मदगंधी गुद्-गुदे आंचल में लिपटा-चिमटा है विज्ञान।

सृष्टि को ले कर ऋषियों की अपनी-अपनी दृष्टि है। ऋषि अपनी-अपनी दृष्टि से ब्रह्माण्ड, प्रकृति एवं सृष्टि के ऐश्वर्य को माप रहे हैं। अपने-अपने दर्शन से उन्हें जो अनुभूतियाँ हुई

थीं, उन्हींको उन्होंने अपनी कविता में व्यक्त किया है । पर एक बात निर्विवाद है कि हर ऋषि की दृष्टि विज्ञान के क्षेत्र से बाहर नहीं है । उस काल में कहाँ थीं, आज के जैसी कोम्प्यूटरीकृत प्रयोगशालाएँ । उनके पास तो दो ही प्रयोगशालाएँ थीं, उनकी दृष्टि और उनका यज्ञगृह ।

इस संबन्ध में ऋषि दीर्घतमा औचथ्य का प्रश्नोत्तर पठनीय है ।

वह प्रश्न कर रहा है, अपने यज्ञगृह में उपस्थित ऋषि समाज से । बताओ, पृथ्वी का अन्त (Farthest extent of the Earth) कहाँ है ? भुवन की नाभि कहाँ है ?[१] अश्व (सूर्य) का फलवान् शुक्र (वीर्य) कहाँ हैं ? और परमव्योम (द्यु) की वाणियाँ कहाँ हैं ? –

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो, अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योमः ॥ [२]

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य के प्रश्न को सुनकर यज्ञगृह का ऋषि समाज अवाक् रह गया । ऋषि दीर्घतमा ने ही अपने सामने की यज्ञवेदि को दिखा कर कहा – 'अरे, यह यज्ञवेदि ही पृथ्वी का अन्त है । यह जो हम आहुतियाँ प्रदान करके यज्ञ कर रहे हैं तो यह यज्ञ ही भुवन की नाभि है । यह जो हम आहुति देते हैं सोम की । यह सोम ही अश्व (सूर्य) का फलवान् शुक्र (वीर्य) है और हम जिन ऋचावाणियों द्वारा देवों को आहुतियाँ स्वीकार करने बुलाते हैं। वे ही परमव्योम (द्यु) की वाणियाँ हैं" –

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥[३]

यों ऋषियों की अपनी दृष्टि एवं यज्ञगृह ये ही दोनों उस काल में प्रयोगशालाएँ थीं ।

ऋषि शंयु बार्हस्पत्य केवल चार ही पदार्थों से सृष्टि होना मानता है – सूर्य, वायु, जल एवं पृथ्वी । इनके बाद कोई पदार्थ पैदा नहीं हुआ क्योंकि सृष्टि के लिए प्रकृति को किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता ही नहीं थी ।[४] इससे यह स्पष्ट है कि सृष्टि के लिए जिनकी आवश्यकता होती हैं वे पदार्थ अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि प्रकृति स्वयंभू है ।

ऋषि दीर्घतमा औचथ्य ने अपनी अनेक ऋचाओं में ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि के गूढतम रहस्यों का वर्णन किया है । यह ऋषि इतना कुशाग्र, सूक्ष्मप्रज्ञावान्, मेधावी एवं प्रतिभावान् कवि है कि इसने एक ही पद में सृष्टि की समूची प्रक्रिया को रूपायित कर दिया है – 'जीवपीतसर्गः ।'[५] अर्थात् अग्नि का जीवों को पीना ही सृष्टि है, सृष्टि की प्रक्रिया है ।

द्यु में सूर्य अग्नि, अन्तरिक्ष में विद्युत्-अग्नि और पृथ्वी में वैश्वानर अग्नि ये तीनों भुवनों के अग्नि सतत जीवों को पी रहे हैं । सृष्टि के हर जीव में बैठा अग्नि जीवों को पी रहा

१. ✓णह बंधने से नाभि । जैसे माता के उदर में गर्भ को नाभि बांधती है वैसे ही सृष्टि को बांधनेवाली (अन्तरिक्षरूपा) नाभि ।
२. ऋग्वेद १/१६४/३४
३. ऋग्वेद १/१६४/३५/
४. ऋग्वेद ६/४८/२२/
५. ऋग्वेद १/१४९/२ ।

है। हमारे भीतर बैठा जठराग्नि हमारे आहार रूप जीवों को पी रहा है और हम इसीसे जीवित हैं। जिस दिन ये अग्नि शीतल हो जाएंगे, उस दिन जीवों का पीना भी बंद हो जाएगा और सभी का. 'राम-नाम सत्य है', हो जाएगा।

ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र कहता है - 'मित्र एवं वरुण ऋत को बढ़ाते हैं।' - 'ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधा..[1] मित्र दिन का सूर्य है और वरुण रात्रि का। ये ऋत को बढ़ाते हैं अर्थात् - सृष्टि को बढ़ाते हैं। ऋत सृष्टि के अटल नियम (Cosmic Law, Laws of Nature) को कहते हैं। ऋत, ऋतु एवं आर्तव ये तीनों धर्म एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। ऋतु गर्भाधान के समय को कहते हैं एवं आर्तव गर्भस्राव को। प्रकृति, सृष्टि एवं पृथ्वी तीनों ही सदा ऋतुमती एवं आर्तवती रहती हैं। ये सदा सुहागिन हैं। ये धर्म स्त्रियों में भी हैं। यों ऋत, ऋतु एवं आर्तव ये सृष्टि के त्रिक हैं। ✓ ऋ गतौ क्र्यादि के धातु से ऋत शब्द बनता है।

ऋषि सौभरि काण्व अग्नि को सृष्टि का कारण मान रहा है। यह कहता है कि जिस अग्नि में सृष्टि के सभी कर्मों का आधान हो रहा है, उस अग्नि में मैं आहुतियाँ अर्पित कर रहा हूँ - अर्दर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादुधुः॥[2] आशय यह कि समष्टि एवं व्यष्टि की सभी गर्भाधान की क्रियाएँ अग्नि में हो रही हैं। 'छान्दोग्योपनिषद्' में पञ्चाग्निविद्या का वर्णन है[3]। इसमें स्त्री को अग्नि कहा गया है। जिसमें पुरुष अपने शुक्र का आधान करता है और इससे गर्भ रहता है। यज्ञ के साङ्गरूपक द्वारा विषय समझाया गया है - योषा वाव गौतमाग्निः। तस्या उपस्थ एव समित्। यदुपमन्त्रयते स धूमः। योनिरर्चिः। यदन्तः करोति तेऽङ्गाराः। अभिनन्दाः विस्फुलिङ्गाः। तस्मिन्नेतसिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति। तस्या आहुतेर्गभः सम्भवति॥[4]

ऋग्वेद में अनेक ऋषियों ने सृष्टि-वर्णन किया है। इनमें से निम्न लिखित महत्त्वपूर्ण हैं :

१. ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज ६/९। वैश्वानरअग्नि सृष्टि का मूल कारण है।
२. ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ ७/३३/७। सूर्य, वायु एवं अग्नि ये त्रिक सृष्टि के मूल कारण हैं।
३. ऋषि लौक्य बृहस्पति, ऋषि बृहस्पति आङ्गिरस अथवा ऋषिका दाक्षायणी अदिति, १०/७२। अदिति से आदित्य। आदित्य से सृष्टि।
४. ऋषि नारायण १०/९०। आदि पुरुष से विराज् स्त्री-तत्त्व। विराज् स्त्री-तत्त्व से दूसरे पुरुष का जन्म। इस दूसरे पुरुष से सृष्टि। (पुरुषसूक्त के नाम से प्रसिद्ध)।
५. ऋषि परमेष्ठी प्रजापति १०/१२९। स्वधा मूल तत्त्व। जिसने अपने (स्व) सामर्थ्य से स्वयं को धारण कर रखा है वह स्वधा। स्वधा ही आभु। आभु सृष्टि का मूल कारण। (नासदीय-सूक्त, देवता- भाववृत्तम्)
६. ऋषि प्राजापत्य यज्ञ १०/१३०/सूर्य पुरुष द्वारा सृष्टि। देवता भाववृत्तम्।

---

१. ऋग्वेद १/२/८ २. ऋग्वेद ८/१०३/१। ३. छान्दोग्योपनिषद् ५/८/१-१०। ४. हे गौतम, स्त्री ही अग्नि, उसका कमर से घुटनों तक का भाग (उपस्थ = lap) ही समिधा, अनुकूलता के लिए पुरुष द्वारा स्त्री से की गई प्रार्थना ही धुंआ, योनि ही ज्वाला, भीतरी रति अंगारा और सुख ही चिनगारियाँ हैं। इस अग्नि में देव (पुरुष) वीर्य की आहुति देते हैं। जिससे गर्भ उत्पन्न होता है।

७. ऋषि हिरण्यगर्भ प्राजापत्य १०/१२१ । हिरण्यगर्भ मूल पदार्थ से सृष्टि । हिरण्य अर्थात् ब्रह्माण्ड के सूर्य-नक्षत्रादि ज्योतिष्पिण्ड । गर्भ अर्थात् ये सूर्यादि ज्योतिष्पिण्ड जिसके गर्भ में हैं वह मूल प्रकृति हिरण्यगर्भ । ब्रह्माण्ड के अस्तित्व में आने से पूर्व का प्रकृति का रूप ही हिरण्यगर्भ। देवता कः प्रजापति ।

८. ऋषि मधुच्छन्दा अघमर्षण (१०/१९०) तपस् ब्रह्म से अग्नि (ऋत) और प्राण (सत्य) । इनके बाद रात्रि और अन्तरिक्ष रूप समुद्र । इनके बाद संवत्सर अर्थात् काल, ऋतुएँ एवं सृष्टि। प्रस्तुत सृष्टिसूक्त सुबोध है ।

ऋग्वेद के अतिरिक्त 'शुक्लयजुर्वेद' का ऋषि दधीच आथर्वण रचित ४०वाँ खिल अध्याय ईशावास्योपनिषद् एवं अथर्ववेद का अथर्वा ऋषि रचित भूमिसूक्त (१२/१) भी सृष्टिवर्णन विषयक हैं ।

पुम् (Positive) एवं स्त्री (Negative) भेद प्रकृति में भी

ऋषियों के सृष्टिवर्णन के संदर्भ में हम एक ओर तथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं वह यह कि विज्ञान केवल विद्युत् में पुम् (Positive) और स्त्री (Negative) भेदों को जानता है पर ऋषियों की दृष्टि में ये भेद प्रकृति में भी हैं । तभी ऋषि सूर्य के साथ सूर्या, सूर्य के साथ सरण्यू, सूर्य के साथ पृथ्वी, इन्द्र के साथ इन्द्राणी, अग्नि के साथ अग्न्यायी, वरुण के साथ वरुणानी, एवं अश्विनौ के साथ उषा का दाम्पत्य भाव में स्तवन कर रहे हैं । फिर सूर्य की शक्ति भारती, अन्तरिक्ष की शक्ति सरस्वती एवं पृथ्वी की शक्ति इळा का भी स्तवन है । ऋषि मेधातिथि काण्व अग्नि से कहता है कि वह देवपत्नियों को यहाँ हमारे यज्ञगृह में लाए[1] । यों ऋषि प्रकृति में भी पुम् एवं स्त्री दोनों का संयोग देख रहे हैं । संभव है, भविष्य में हम जिस दिन पुम् अग्नि (Positive Heat) एवं स्त्री अग्नि (Negative Heat), पुम् वरुण (Positive ether) और स्त्री वरुण (Negative ether) का आविष्कार सुनेंगे, उस दिन विज्ञान को ऋषियों की यथार्थता ध्यान में आएगी ।[2]

ऋग्वेद के मण्डलों का रचनाक्रम

ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है । इन मण्डलों की रचना अलग-अलग कालों में हुई है । इस संबन्ध में अलग-अलग मत हैं ।

एक मत यह कि ऋषियों को ऋग्वेद के मन्त्रों का दर्शन अलग-अलग कालों में हुआ अर्थात् ऋषियों ने अलग-अलग कालों में ऋग्वेद के मन्त्रों की रचना की । इन मन्त्रों की रक्षा उनकी पीढ़ी में आगे से आगे होती रही । फिर जब सभी ऋषिकुलों एवं ऋषियों के मन्त्रों के संग्रह की आवश्यकता प्रतीत हुई तब किसी एक प्रभावशाली ऋषि ने ही दस मण्डलों में 'ऋग्वेद' नाम से संग्रह कर दिया । यों विभिन्न कालों में, विभिन्न ऋषिकुलों तथा विभिन्न ऋषि-ऋषिकाओं

१. ऋग्वेद-१/२२/९ । २. ऋग्वेदसंहिता, शिवनाथ आहिताग्नि एवं शंकरदत्त शास्त्री, प्रथम मण्डल।

द्वारा रचित मन्त्रों का एक ही समय में एक ही व्यक्ति के द्वारा संपादन हुआ है ।[१]

दूसरा मत यह कि 'ऋग्वेद' की रचना चार अलग-अलग कालों में हुई है ।

प्रथम काल

रचना की दृष्टि से ऋग्वेद का सब से प्राचीन भाग मण्डल दो से सात तक का है । ये छः मण्डल ही ऋग्वेद के केन्द्रीय भाग हैं । ये ही ऋग्वेद के हृदय हैं, प्राण हैं । इन मण्डलों में से प्रत्येक या तो एक ही ऋषि की रचना है या फिर एक ही ऋषि-परिवार द्वारा रचित है । इसी लिए ये मण्डल परिवारमण्डल, वंशमण्डल, या गोत्रमण्डल कहलाते हैं । द्वितीय मण्डल गार्त्समण्डल, तृतीय वैश्वामित्रमण्डल, चतुर्थ वामदेवमण्डल, पञ्चम आत्रेयमण्डल, षष्ठ भारद्वाजमण्डल एवं सप्तम मैत्रावरुणिवसिष्ठमण्डल कहा जाता है ।

द्वितीय मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है गृत्समद शौनक भार्गव । यह ऋषि आङ्गिरस कुल में जन्मा था, पर इसकी ऋचा-प्रतिभा देखकर भृगु कुल के ऋषि शुनक ने इसे पुत्र के रूप में दत्तक ले लिया । अतः यह शौनक गृत्समद कहलाया । तृतीय मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है विश्वामित्र गाथिन । इसके अप्रतिम शौर्य का वर्णन हम पहले पढ़ चुके हैं । चतुर्थ मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है वामदेव गौतम । इसके अभावमय, संघर्षमय, तेजोमय, पूतजीवन को हम पहले पढ़ चुके हैं । पंचम मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है श्यावाश्व आत्रेय । यह प्रेमपेशल, सहृदय कवि एवं ऋग्वेद का अद्वितीय मरुत्-स्तोता है । यह सौंदर्य का, ऐश्वर्य का एवं रसों का कवि है । यह गुणग्राही ऋषि है । षष्ठ मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है बार्हस्पत्य भरद्वाज । यह द्विबर्हा है । द्यु एवं अन्तरिक्ष इन दोनों भुवनों (बर्हों) के गूढ़तम सृष्टि-रहस्यों का यह ज्ञाता है । इसीका भुवनविजेता नरपुङ्गव पुत्र है युवा ऋषि पायु भारद्वाज। सप्तम मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है मैत्रावरुणि वसिष्ठ । यह उत्तम ऋग्वेदी होता, सामवेदी उद्गाता एवं यजुर्वेदी अध्वर्यु था । यह अपने युग का प्रभावशाली युगनिर्माता ऋषि था । यह तृत्सुओं का पुरोहित था । इसके पुत्रों ने इसकी भूरि-भूरि स्तुति की है । पढ़िए-(७/३४/१०-१४)

द्वितीय काल

ऋग्वेद के मण्डलों के रचनाक्रम में दूसरा स्थान अष्टम मण्डल का है। यह आंशिक वंशमण्डल है । इसमें अधिकांश सूक्त कण्ववंश के ऋषियों के हैं । ऋषि सौभरि काण्व इस मण्डल का महत्त्वपूर्ण ऋषि है । इस मण्डल का ऋषि प्रियमेध आङ्गिरस भी उत्तम सुकोमल कवि है । सुनरख (वृन्दावन) में ऋषि सौभरि काण्व का प्राचीन आश्रम है - यमुना किनारे ।

तृतीय काल

ऋग्वेद के मण्डलों के रचनाक्रम में तीसरा स्थान नवम मण्डल का है । २ से ७ मण्डलों में जितने सोम-सूक्त थे, उनको अलग छाँटकर नवम मण्डल बनाया गया है । अतः इस मण्डल के सूक्तों के ऋषि वे ही हैं जो २ से ७ मण्डलों के हैं । इसमें सभी सूक्त सोम के हैं । अतः यह सोममण्डल

१. डॉ. चि. ग. काशीकर (पुणे) पत्र ११-५-११

या पवमानमण्डल कहा जाता है। पवमान सोम को कहते हैं - सोमो वै पवमानः ।[१]

चतुर्थ काल

ऋग्वेद के मण्डलों के रचनाक्रम में चौथा स्थान प्रथम एवं दशम मण्डल का है। २ से ९ मण्डलों तक का ऋग्वेद तैयार हो जाने के बाद इसके आदि में प्रथम तथा अन्त में दशम मण्डल जोड़ा गया। दोनों मण्डलों के रचनाक्रम में दशम मण्डल की अपेक्षा प्रथम मण्डल अधिक प्राचीन है।

यों चार अलग-अलग कालों में ऋग्वेद की रचना हुई है और इसका संग्रह भी इन चारों कालों में अलग-अलग हुआ है।[२]

वेदव्यास एक कल्पित व्यक्ति

वेदव्यास चारों वेदों के संग्रहकर्ता हैं। ऐसी जो मान्यता चली आ रही है, वह प्रामाणिक नहीं है क्योंकि वेदव्यास ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। डॉ. चि. ग. काशीकर (पूणे) मुझे एक पत्र दि. ५-१-९९ में लिखते हैं - 'न वेदों का ग्रथन-संपादन वेदव्यास ने किया और नहीं पुराणों का लेखन ही वेदव्यास ने किया है, क्योंकि वेदव्यास ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है'' । डॉ. श्रीधर वर्णेकर अपने 'संस्कृतवाङ्मयकोश' प्रथम भाग (ग्रंथकार) में लिखते हैं कि 'वेदव्यास या व्यास व्यक्तिवाचक नहीं किंतु जातिवाचक नाम है।' वेदों के साथ भी व्यास को जोड़ देना और पुराणों के साथ भी व्यास को जोड़ देना, यह किसी परंपरा की करतूत लगती है। वैदिक संस्कृति अलग है और पुराण की संस्कृति अलग है। एक की उपासना प्राकृतिक देव-स्तुतियाँ एवं यज्ञ हैं तो दूसरी की अवतारवाद। फिर एक ही व्यक्ति कैसे दोनों का संग्रहकर्ता हो सकता है ? एक ही समय में एक ही व्यक्ति की दो विरोधी विचारों की यात्रा कैसे संभव है ?

ऋग्वेद का सर्वश्रेष्ठ ऋषि दीर्घतमा औचथ्य

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का ऋषि दीर्घतमा औचथ्य न केवल ऋग्वेद अपितु चारों वेदों में जितने ऋषि हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ ऋषि है। आकाश के नक्षत्रों में सूर्य की भाँति यह वेदाकाश का परम देदीप्यमान ऋषि है। यह अपनी ऋषिप्रतिभा एवं कविशक्ति को ले कर चारों वेदों के ऋषियों में मूर्धाभिषिक्त ऋषि है। इसकी कविता विश्ववाङ्मय की अमर निधि है। इसका १६४वाँ सूक्त काव्य एवं विज्ञान के उच्चतम शिखरों को छू रहा है। इसमें ब्रह्माण्ड के गूढतम रहस्यों की ऐसी अनेक अनबूझ ऋचाएँ हैं जो विश्लेषण के लिए आज भी किसी विलक्षण सुपात्र प्रतिभा की प्रतीक्षा में अक्षत बैठी हैं। इसकी एक ऋचा 'द्वा सुपर्णा...' चारों वेदों के २०४३३ मन्त्रों में सुमेरु है। यह वेदज्ञों के कण्ठ का हार है। दो सुनहरे पक्षियों के रूपक द्वारा ऋषि ने इसमें समूची सौरसृष्टि को रूपायित कर दिया है - 'दो सुनहरे जुड़वा पक्षी हैं। एक-दूसरे में मिले हुए हैं। दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। इनमें से एक पक्षी वृक्ष के मीठे फल खा रहा है तो दूसरा पक्षी मीठे फल खानेवाले पक्षी को चारों ओर से देख रहा है'' -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ ऋग्वेद - १/१६४/२०।

फल खानेवाला सुनहरा पक्षी है सूर्य और सूर्य की सारी सृष्टि। फल न खानेवाला और

१. श. २/२/३/२२ २. वैदिकसाहित्य का इतिहास, डॉ. कर्णसिंह, पृ. २९-३०।

फल खानेवाले पक्षी को चारों ओर से देखनेवाला सुनहरा पक्षी है सूर्य एवं सूर्य की सारी सृष्टि में दूध में घी की तरह व्याप्त सोम । सोम जीवन-तत्त्व है । चेतन-तत्त्व है । यह अतीन्द्रिय है। यह निर्गुण-निराकार है । यह साकार सृष्टि में व्याप्त निर्गुण-निराकार जीवनतत्त्व है । वृक्ष यहाँ संवत्सर है । संवत्सर अर्थात् वर्ष, काल । इस संवत्सर - वृक्ष पर सूर्य एवं सूर्य की सारी सृष्टि की चहल-पहल है । **संवसन्तो अस्मिन् भूतानि सः संवत्सरः** अर्थात् जिसमें सभी उत्पन्न हुए रहते हैं वह संवत्सर है । सूर्य भी उत्पन्न हुआ है ।

प्रथम मण्डल में २७ ऋषि एवं २ ऋषिकाओं की ऋचाएँ संगृहीत हैं । दशम मण्डल में ऋषियों की संख्या सर्वाधिक है । इसमे १८१ ऋषि एवं २० ऋषिकाओं की ऋचाएँ संगृहीत हैं । दोनों मण्डलों में सूक्त संख्या समान है १९१ सूक्त ।

पुरुषसूक्त प्रक्षिप्त अंश

ऋग्वेद दशम मण्डल का ऋषि नारायण रचित पुरुष देवता वाला सूक्त ९०, ऋग्वेदकाल की नहीं किन्तु ऋग्वेदकाल से सैकड़ों वर्ष बाद, वर्णव्यवस्था के अस्तित्व में आ जाने के बाद की रचना है । ऐसा प्रो. घाटे का मत है । इसकी १२वीं ऋचा में जो चारों वर्णों की उत्पत्ति का विधान है कि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए, यह विचार ऋग्वेदकाल के जीवन से मेल नही खाता है । प्रो. घाटे लिखते हैं कि 'चातुर्वण्य का विचार ही मूल 'ऋग्वेद' के लिए पराया है ।'[१] प्रो. घाटे का मत है कि बहुत बाद में जब वर्णव्यवस्था अस्तित्व में आ गई थी, तब बहुत से ब्राह्मणों ने इसे रच कर ऋग्वेद में घुसा दिया था । वे लिखते हैं - "यह सूक्त जिसे पुरुषसूक्त कहते हैं, बहुत से विद्वानों द्वारा बाद में रचित माना जाता है क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत आधुनिक प्रकृति के चिह्न हैं ।"[२]

डॉ. चि. ग. काशीकर पुरुषसूक्त को प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं । (पत्र २७-६-९९) आपके मतानुसार हमें १२वीं ऋचा का अर्थ वर्णव्यवस्था के साथ न जोड़ कर व्यक्तिगत कर्म के साथ जोड़ना होगा। जो जैसा कर्म करे वैसा कहलाए । एक परिवार में चार व्यक्ति रहते हों तो वे अपने-अपने कर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र हुए । इसमें कोई ऊँच-नीच का प्रश्न नहीं है । हमें लगता है कि आगे चलकर जब समाज चार वर्णों में बाँट दिया गया तब अपना बड़प्पन जताने के लिए ब्राह्मण पुरोहितों ने इस ऋचा का अर्थ वर्णव्यवस्था के साथ जोड़ दिया है । ऐसी ही उक्ति भगवद्गीता में भी है - 'चातुर्वण्यं मया सृष्टं ।' पर एक स्वस्थ समाज के लिए इस प्रकार के ऊँच-नीच के विचार शोभनीय नहीं हैं । इससे समाज में बिखराव आता है । प्रो. घाटे वर्णव्यवस्था की निन्दा करते हुए लिखते हैं - 'कोई भी संस्था अपने प्रभाव में वर्णव्यवस्था से बढ़कर निर्दयी नहीं है ।"[३] और ब्लूम फील्ड वर्णव्यवस्था को राष्ट्रघाती, समाजघाती कहते हुए लिखते हैं - "इन्हीं (वर्णव्यवस्था) के तत्त्वों ने लगभग ३० करोड़ निवासियों के देश पर ६० हजार सैनिक तथा ६० हजार असैनिक विदेशियों का अपने कौशल से शासन-चमत्कार सम्भव कर दिखाया ।[४]"

१. ऋग्वेद पर व्याख्यान, पृ. १४३, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
२. ऋग्वेद पर व्याख्यान, पृ. १४३, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
३. ऋग्वेद पर व्याख्यान, पृ. १४३, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
४. ऋग्वेद पर व्याख्यान, पृ. १४३, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ऋग्वेद का प्रत्येक ऋषि एवं ऋषिका एक स्वतंत्र कवि एवं कवयित्री

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि ऋग्वेद में लगभग ५०० से अधिक ऋषि एवं ३० ऋषिकाओं की ऋचाएँ संगृहीत हैं। ये ऋचाएँ १०२८ सूक्तों में तथा सूक्त दस मण्डलों में विभक्त हैं। ऋषि-ऋषिकाओं को लेकर हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक ऋषि एवं ऋषिका विचार, भाव, भाषा, विषयनिरूपण, शैली, छन्द इत्यादि की दृष्टि से अपनी अलग पहचान रखते हैं। अतः ये स्वतंत्र कवि एवं कवयित्रियाँ हैं। अध्ययन की दृष्टि से ये स्वतंत्र इकाई हैं, स्वतंत्र अध्याय हैं और स्वतंत्र पुस्तक के विषय हैं। फिर भले ही किसी ने सौ से भी ज्यादा ऋचाएँ रची हों या फिर एक ही। ऋग्वेद में १।१००वाँ सूक्त ऐसा है कि इसे वृषागिर के पांच पुत्रों ने मिलकर रचा है – ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस।

ऋग्वेद की ऋषिकाएँ

पृथ्वी जैसे बीज को रूप-आकार देती है वैसे ही नारी मानव को रूप-आकार देती है- अपने मातृत्व से। यह संसार को हरा-भरा रखती है अपने राग-रंग, अनुराग, नैकट्य एवं आश्लेष द्वारा क्योंकि यह श्रद्धा है, कामिनी है, कामायनी है। महाकवि जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य कामायनी में श्रद्धा का मन प्रियतम मनु के लिए ढीला हो चुका है। वह समर्पित होने को आतुर है तब लज्जा उसे रोकती है –

इतना न चमत्कृत हो बाले !
अपने मन का उपचार करो;
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो कुछ सोच-विचार करो ![१]

तब मनु की ओर बढ़ती हुई श्रद्धा अपनी विवशता प्रकट कर रही है –

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है;
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल छलकता है।[२]

तब लज्जा भी शिथिल होकर श्रद्धा के अर्पण में अपनी सहानुभूति की मुद्रा लगाती है –

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग-पग-तल में;
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।[३]

यह है नारी का अर्पण। केवल देना है। लेना कुछ नहीं है। पीयूष-स्रोत-सी बहना है – मनु-मानव के हृत्तल में।

---

(१) कामायनी, लज्जासर्ग, महाकवि जयशंकर प्रसाद। ऋग्वेद १०/१५१ सूक्त की देवता है ऋषिका कामायनी श्रद्धा। इस सूक्त की ५ श्रद्धा विषयक ऋचाएँ ही 'कामायनी' महाकाव्य का आधार है। 'कामायनी' महाकाव्य की ये ५ ऋचाएँ ही गंगोत्री हैं। (२) कामायनी, लज्जासर्ग, महाकवि जयशंकर प्रसाद। (३) कामायनी, लज्जासर्ग, जयशंकर प्रसाद।

अतः मन्त्र-स्पर्धा में ऋषिकाओं को ऋषियों के साथ देखना न्याय नहीं है। ऋषिकाओं का क्षेत्र ही अलग है। वे जो करती रहीं अपने क्षेत्र में ऋषि कहाँ कर पाए थे ? और नारी जो करती है अपने क्षेत्र में, पुरुष कहाँ कर पाते हैं ? अतः ऋग्वेद में ऋषियों की तुलना में ऋषिकाओं का कम होना स्वाभाविक है। फिर भी जितनी हैं, वे गरिमा में ऋषियों की अपेक्षा तीन गुनी अधिक हैं। एक, इन्होंने ऋषियों को जन्म दिया। दो, इन्होंने ऋचाएँ रचीं। तीन, इन्होंने गृहस्थी सम्हाली एवं यज्ञगृह सम्हाले।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की ऋचाओं के अध्ययन से इतना अवश्य स्पष्ट हो रहा है कि इनका झुकाव घर-संसार को सुखपूर्वक चलाने की ओर ही है। ये ऋषियों को संसार-सुख की ओर अभिमुख कर रही हैं। यह हम पहले पढ़ चुके हैं कि ऋषिका रोमशा ऋषि भावभव्य को स्पर्श-सुख की गहराई में ले जा रही है और ऋषिका लोपामुद्रा अपने रतिदान द्वारा ऋषि अगत्स्य को कृतकाम कर रही है। ऋषिका रोमशा, ऋषिका लोपामुद्रा, ऋषिका आत्रेयी विश्ववारा, ऋषिका शश्वती आङ्गिरसी, ऋषिका अपाला, ऋषिका यमी, ऋषिका उर्वशी, शिखण्डिनी नामक दो अप्सरा ऋषिकाएँ, ऋषिका प्राजापत्य दक्षिणा, ऋषिका आम्भृणी वाक्, ऋषिका अगस्त्य श्वसा, ऋषिका पोलोमी शची, ऋषिका काक्षीवती घोषा, ऋषिका गोधा, ऋषिका भारद्वाजी रात्रि, ऋषिका ऐन्द्राणी, ऋषिका कामायनी श्रद्धा, ऋषिका देवजामय इन्द्रमातर, ऋषिका सार्पराज्ञी, ऋषिका जुहू ब्रह्मजाया, ऋषिका सावित्री सूर्या, ऋषिका इन्द्रस्नुषा वसुक्र पत्नी इत्यादि ब्रह्मवादिनी, मन्त्र रचनेवाली ऋषिकाएँ मातृत्व की उज्ज्वल नक्षत्रराशि हैं। इन्होंने शिशुओं की ही भाँति अपने अन्तः सत्त्व से, अपनी प्रज्ञा से ऋचाओं को भी जन्म दिया है। ऐसी ब्रह्मप्रसू, ऋचाप्रसू, मन्त्रप्रसू, ऋषिप्रसू, यज्ञ-कर्मप्रसू मातृत्व के लिए ऐसा कहना कि इसे वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, कितना अशोभन है ! एक घटना है। वेद-पाठ करती महिलाओं की बड़े ही कठोर स्वर में भर्त्सना करके एक विरक्त संन्यासी ने वेद-पाठ बंद करवा दिया और कहा 'स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।'[१] पर वेद विरक्तों - संन्यासियों - के लिए नहीं किंतु अनुरक्त गृहस्थों के लिए हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण का आदेश है - अयज्ञो वा एषः योऽपत्नीकः (२/२/२/६) बिना पत्नीवाला अयज्ञवान् होता

१. पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण भी किया और मुँह की भी खाई। यह घटना उसी वर्ष की है। टाउन हॉल (अहमदाबाद) में एक आयोजन में महिलाएँ मधुर कंठ से मंगलाचरण में वेदमन्त्रों का गान कर रही थीं। उस समय श्री निरञ्जनदेवतीर्थ (पुरी, शंकराचार्य) पधारे और महिलाओं द्वारा वेदपाठ होते देख आग बबूला हो गए और कठोर शब्दों में बोले "बन्द करो, बन्द करो इसे। स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।" महिलाएँ सिट-पिटा गईं। दर्शकों में सन्नाटा छा गया। वेद-पाठ बंद हो गया। इनके जीवन की एक दूसरी घटना है - सन् १९४६ में महाराणा मेवाड़ श्री भूपालसिंहजी ने उदयपुर में स्वामीश्री करपात्रीजी के अधिष्ठातृत्व में लक्षचण्डी यज्ञ करवाया था। श्री निरञ्जनदेवतीर्थ पूर्वाश्रम में गृहस्थ श्री चन्द्रशेखर नाम से थे और करपात्रीजी के शिष्य थे। श्री करपात्रीजी एवं श्री चन्द्रशेखरजी दोनों ने मिलकर लक्षचण्डी यज्ञ के लिए संस्कृत में संकल्प बनाया। जिसमें अशुद्धियाँ रह गई थीं। अशुद्धियाँ निकालने वाले पं. मार्कण्डेय मिश्र (प्रधानाचार्य, संस्कृत कॉलेज, उदयपुर) थे। शास्त्रार्थ हुआ। इसके निर्णायक थे ब्रह्मचारीजी सरस्वतीदासजी (सुल्तानपुर, राजस्थान)। एक तरफ थे करपात्रीजी एवं श्री चन्द्रशेखरजी, दूसरी तरफ थे श्री मार्कण्डेयजी एवं आपके शिष्य पं.खड्गनाथ मिश्र। इस शास्त्रार्थ में करपात्रीजी, श्री चन्द्रशेखरजी एवं साधुओं ने जो दक्षयज्ञ जैसा रौद्र वातावरण खड़ा कर दिया। सरस्वती भी उसका वर्णन करते हुए लजाती है। अयं पटः संवृत एव शोभते, यह फटा और छिद्रोंवाला कपड़ा तो तह किया हुआ ही ठीक लगता है।

है। यज्ञ पति-पत्नी दोनों से ही सम्पन्न होता है । फिर वेद एवं यज्ञ तो सहोदर जैसे हैं । विरक्तों ने तो यज्ञोपवीत, यज्ञ, अग्निसंस्कार इत्यादि का भी त्याग कर दिया है । विरक्तों के लिए तो अरण्य ही आसन, ज्ञान ही आहार और मोक्ष ही तृप्ति है । सुखी गृहस्थी में मुँह मारना अशोभन है । वेदों को विरक्त जो प्रयत्नपूर्वक आत्मचिन्तनशास्त्र के रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, यह लोकजीवन के साथ छल है । कुछ उपनिषद् आत्मचिन्तन शास्त्र हो सकते हैं पर वेदों का मन्त्रभाग, ऋषि-ऋषिकाओं का काव्यश्रम तो पूरी तरह लोकव्यवहारशास्त्र है, पूरी तरह लोकजीवन से सम्बद्ध है । यों विरक्तों ने भी वेदों को जीवन से हटाने के प्रयास किए हैं । भारत ने जब से वेदों को व्यवहार-जगत् से अलग किया है तब से भारत का पतन प्रारंभ हुआ है । विरक्तों ने कुछ उपनिषदों का आत्मचिन्तन, ज्ञानपरक अर्थ लोगों के सम्मुख रखकर यह ठसाया है कि बस, यही है वेदों का सार । विरक्तों के ऐसे व्यवहार की कटु आलोचना करते हुए पं. मोतीलालजी शास्त्री कहते हैं कि, 'विरक्त जो वेदों को केवल आत्मचिन्तनशास्त्र कहते हैं यह उनकी अनुचित बात है । वेद वास्तव में लोकव्यवहार के शास्त्र, जीवन के शास्त्र हैं ।'[१] शोभन एवं भव्यजीवन कैसे जिया जा सकता है, इसके उदाहरण वेदों में हैं । विरक्त परंपरा का ध्यान वेदों के मन्त्र-भाग की ओर नहीं गया लगता है । आदि शंकराचार्य ने भी केवल दश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं भगवद्गीता इन तीन पर ही भाष्य लिखे हैं, जो प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं । इन्होंने जगत् को मिथ्या कहा है । 'पद्मपुराण' इनकी कटु आलोचना करता हुआ इनको प्रच्छन्न बौद्ध और इनके जगत् मिथ्यावाले मायावाद को असत् शास्त्र कह रहा है - मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते । मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा ॥ पं. राहुल सांकृत्यायन जैसे विचारकों ने भी शंकराचार्य के प्रच्छन्न बौद्धत्व का अनुमोदन किया है । हमारे कथन का सार यह कि विरक्त परंपरा समाज को सही दिशा नहीं दे रही है किन्तु भटका रही है ।

वेदों की पौरुषेयता

वेदों की पौरुषेयता अर्थात् वेद पुरुष रचित हैं । वेद ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा रचित हैं ।[२] वेद ऋषि-ऋषिकाओं का काव्य-श्रम हैं । ऋषि-ऋषिकाओं ने सोद्देश्य वेद-मन्त्र रचे हैं ।

ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र कहता है - "मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ "अग्निमीळे...॥[३] ऋषि सौभरि काण्व कहता है - "जिसमें सभी कर्मों का आधान होता है - उस अग्नि में मैं आहुतियाँ अर्पित करता हूँ ।[४] ऐसे सैकड़ों उत्तम पुरुष के प्रयोगों से ऋग्वेद भरा पड़ा है। ऋषि 'मैं' का प्रयोग करके स्तुतियाँ कर रहे हैं और आहुतियाँ अर्पित कर रहे हैं ।

पिता एवं परिवार से उपेक्षित ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप को ऋषि विश्वामित्र दत्तक पुत्र के रूप में वात्सल्य प्रदान करता है । अतः ऋषि आजीगर्ति के सूक्तों में इसे ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप सकृत्रिमो वैश्वामित्र देवरात कहा गया है । देखिए, इसका नाम भी विश्वामित्र ने देवरात रख दिया

---

१. वेद का स्वरूप विचार, पं. मोतीलालजी शास्त्री, पृ. ११९ ।

२. 'वेद मनुष्यों की रचनाएँ ही हैं, भले ही वे उच्चकोटि के मनुष्य हों ।' निघण्टु तथा निरुक्त पृ. ७९ डॉ. लक्ष्मणसरूप

३. ऋग्वेद १/१/१ । ४. ऋग्वेद ८/१०३/१ ।

अतः मन्त्र-स्पर्धा में ऋषिकाओं को ऋषियों के साथ देखना न्याय नहीं है । ऋषिकाओं का क्षेत्र ही अलग है । वे जो करती रहीं अपने क्षेत्र में ऋषि कहाँ कर पाए थे ? और नारी जो करती है अपने क्षेत्र में, पुरुष कहाँ कर पाते हैं ? अतः ऋग्वेद में ऋषियों की तुलना में ऋषिकाओं का कम होना स्वाभाविक है । फिर भी जितनी हैं, वे गरिमा में ऋषियों की अपेक्षा तीन गुनी अधिक हैं । एक, इन्होंने ऋषियों को जन्म दिया । दो, इन्होंने ऋचाएँ रचीं। तीन, इन्होंने गृहस्थी सम्हाली एवं यज्ञगृह सम्हाले ।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की ऋचाओं के अध्ययन से इतना अवश्य स्पष्ट हो रहा है कि इनका झुकाव घर-संसार को सुखपूर्वक चलाने की ओर ही है । ये ऋषियों को संसार-सुख की ओर अभिमुख कर रही हैं । यह हम पहले पढ़ चुके हैं कि ऋषिका रोमशा ऋषि भावभव्य को स्पर्श-सुख की गहराई में ले जा रही है और ऋषिका लोपामुद्रा अपने रतिदान द्वारा ऋषि अगत्स्य को कृतकाम कर रही है । ऋषिका रोमशा, ऋषिका लोपामुद्रा, ऋषिका आत्रेयी विश्ववारा, ऋषिका शश्वती आङ्गिरसी, ऋषिका अपाला, ऋषिका यमी, ऋषिका उर्वशी, शिखण्डिनी नामक दो अप्सरा ऋषिकाएँ, ऋषिका प्राजापत्य दक्षिणा, ऋषिका आम्भृणी वाक्, ऋषिका अगस्त्य श्वसा, ऋषिका पोलोमी शची, ऋषिका काक्षीवती घोषा, ऋषिका गोधा, ऋषिका भारद्वाजी रात्रि, ऋषिका ऐन्द्राणी, ऋषिका कामायनी श्रद्धा, ऋषिका देवजामय इन्द्रमातर, ऋषिका सार्पराज्ञी, ऋषिका जुहू ब्रह्मजाया, ऋषिका सावित्री सूर्या, ऋषिका इन्द्रस्नुषा वसुक्र पत्नी इत्यादि ब्रह्मवादिनी, मन्त्र रचनेवाली ऋषिकाएँ मातृत्व की उज्ज्वल नक्षत्रराशि हैं । इन्होंने शिशुओं की ही भाँति अपने अन्तः सत्त्व से, अपनी प्रज्ञा से ऋचाओं को भी जन्म दिया है । ऐसी ब्रह्मप्रसू, ऋचाप्रसू, मन्त्रप्रसू, ऋषिप्रसू, यज्ञ-कर्मप्रसू मातृत्व के लिए ऐसा कहना कि इसे वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, कितना अशोभन है ! एक घटना है । वेद-पाठ करती महिलाओं की बड़े ही कठोर स्वर में भर्त्सना करके एक विरक्त संन्यासी ने वेद-पाठ बंद करवा दिया और कहा 'स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।'[१] पर वेद विरक्तों - संन्यासियों - के लिए नहीं किंतु अनुरक्त गृहस्थों के लिए हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण का आदेश है - अयज्ञो वा एषः योऽपत्नीकः (२/२/२/६) बिना पत्नीवाला अयज्ञवान् होता

१. पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण भी किया और मुँह की भी खाई । यह घटना उसी वर्ष की है । टाउन हॉल (अहमदाबाद) में एक आयोजन में महिलाएँ मधुर कंठ से मंगलाचरण में वेदमन्त्रों का गान कर रही थीं । उस समय श्री निरञ्जनदेवतीर्थ (पुरी, शंकराचार्य) पधारे और महिलाओं द्वारा वेदपाठ होते देख आग बबूला हो गए और कठोर शब्दों में बोले "बन्द करो, बन्द करो इसे । स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।" महिलाएँ सिट-पिटा गईं । दर्शकों में सन्नाटा छा गया । वेद-पाठ बंद हो गया । इनके जीवन की एक दूसरी घटना है - सन् १९४६ में महाराणा मेवाड़ श्री भूपालसिंहजी ने उदयपुर में स्वामीश्री करपात्रीजी के अधिष्ठातृत्व में लक्षचण्डी यज्ञ करवाया था । श्री निरञ्जनदेवतीर्थ पूर्वाश्रम में गृहस्थ श्री चन्द्रशेखर नाम से थे और करपात्रीजी के शिष्य थे । श्री करपात्रीजी एवं श्री चन्द्रशेखरजी दोनों ने मिलकर लक्षचण्डी यज्ञ के लिए संस्कृत में संकल्प बनाया । जिसमें अशुद्धियाँ रह गई थीं । अशुद्धियाँ निकालने वाले पं. मार्कण्डेय मिश्र (प्रधानाचार्य, संस्कृत कॉलेज, उदयपुर) थे । शास्त्रार्थ हुआ । इसके निर्णायक थे ब्रह्मचारीजी सरस्वतीदासजी (सुल्तानपुर, राजस्थान) । एक तरफ थे करपात्रीजी एवं श्री चन्द्रशेखरजी, दूसरी तरफ थे श्री मार्कण्डेयजी एवं आपके शिष्य पं.खड्गनाथ मिश्र । इस शास्त्रार्थ में करपात्रीजी, श्री चन्द्रशेखरजी एवं साधुओं ने जो दक्षयज्ञ जैसा रौद्र वातावरण खड़ा कर दिया । सरस्वती भी उसका वर्णन करते हुए लजाती है । अयं पटः संवृत एव शोभते, यह फटा और छिद्रोंवाला कपड़ा तो ढंका हुआ ही ठीक लगता है ।

है। यज्ञ पति-पत्नी दोनों से ही सम्पन्न होता है। फिर वेद एवं यज्ञ तो सहोदर जैसे हैं। विरक्तों ने तो यज्ञोपवीत, यज्ञ, अग्निसंस्कार इत्यादि का भी त्याग कर दिया है। विरक्तों के लिए तो अरण्य ही आसन, ज्ञान ही आहार और मोक्ष ही तृप्ति है। सुखी गृहस्थी में मुँह मारना अशोभन है। वेदों को विरक्त जो प्रयत्नपूर्वक आत्मचिन्तनशास्त्र के रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, यह लोकजीवन के साथ छल है। कुछ उपनिषद् आत्मचिन्तन शास्त्र हो सकते हैं पर वेदों का मन्त्रभाग, ऋषि-ऋषिकाओं का काव्यश्रम तो पूरी तरह लोकव्यवहारशास्त्र है, पूरी तरह लोकजीवन से सम्बद्ध है। यों विरक्तों ने भी वेदों को जीवन से हटाने के प्रयास किए हैं। भारत ने जब से वेदों को व्यवहार-जगत् से अलग किया है तब से भारत का पतन प्रारंभ हुआ है। विरक्तों ने कुछ उपनिषदों का आत्मचिन्तन, ज्ञानपरक अर्थ लोगों के सम्मुख रखकर यह ठसाया है कि बस, यही है वेदों का सार। विरक्तों के ऐसे व्यवहार की कटु आलोचना करते हुए पं. मोतीलालजी शास्त्री कहते हैं कि, 'विरक्त जो वेदों को केवल आत्मचिन्तनशास्त्र कहते हैं यह उनकी अनुचित बात है। वेद वास्तव में लोकव्यवहार के शास्त्र, जीवन के शास्त्र हैं।'[१] शोभन एवं भव्यजीवन कैसे जिया जा सकता है, इसके उदाहरण वेदों में हैं। विरक्त परंपरा का ध्यान वेदों के मन्त्र-भाग की ओर नहीं गया लगता है। आदि शंकराचार्य ने भी केवल दश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं भगवद्गीता इन तीन पर ही भाष्य लिखे हैं, जो प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने जगत् को मिथ्या कहा है। 'पद्मपुराण' इनकी कटु आलोचना करता हुआ इनको प्रच्छन्न बौद्ध और इनके जगत् मिथ्यावाले मायावाद को असत् शास्त्र कह रहा है – मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते। मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥ पं. राहुल सांकृत्यायन जैसे विचारकों ने भी शंकराचार्य के प्रच्छन्न बौद्धत्व का अनुमोदन किया है। हमारे कथन का सार यह कि विरक्त परंपरा समाज को सही दिशा नहीं दे रही है किन्तु भटका रही है।

वेदों की पौरुषेयता

वेदों की पौरुषेयता अर्थात् वेद पुरुष रचित हैं। वेद ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा रचित हैं।[२] वेद ऋषि-ऋषिकाओं का काव्य-श्रम हैं। ऋषि-ऋषिकाओं ने सोद्देश्य वेद-मन्त्र रचे हैं।

ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र कहता है – "मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ "अग्निमीळे...॥[३] ऋषि सौभरि काण्व कहता है – "जिसमें सभी कर्मों का आधान होता है – उस अग्नि में मैं आहुतियाँ अर्पित करता हूँ।[४] ऐसे सैकड़ों उत्तम पुरुष के प्रयोगों से ऋग्वेद भरा पड़ा है। ऋषि 'मैं' का प्रयोग करके स्तुतियाँ कर रहे हैं और आहुतियाँ अर्पित कर रहे हैं।

पिता एवं परिवार से उपेक्षित ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप को ऋषि विश्वामित्र दत्तक पुत्र के रूप में वात्सल्य प्रदान करता है। अतः ऋषि आजीगर्ति के सूक्तों में इसे ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप सकृत्रिमो वैश्वामित्र देवरात कहा गया है। देखिए, इसका नाम भी विश्वामित्र ने देवरात रख दिया

---

१. वेद का स्वरूप विचार, पं. मोतीलालजी शास्त्री, पृ. ११९।

२. 'वेद मनुष्यों की रचनाएँ ही हैं, भले ही वे उच्चकोटि के मनुष्य हों।' निघण्टु तथा निरुक्त पृ. ७९ डॉ. लक्ष्मणसरूप

३. ऋग्वेद १/१/१। ४. ऋग्वेद ८/१०३/१।

है। यह सात सूक्तों में देवों से जीवन की कामना कर रहा है। ऋषि आजीगर्ति को जीवन कितना प्रिय है - पढ़िए - ऋग्वेद १।२४-३० ।

यज्ञ पूरा हो चुका है। पुत्र जाने को उत्सुक हैं। विदा के लिए वे पिता मैत्रावरुणि वसिष्ठ के आगे हाथ बाँधे खड़े हैं। तब पिता ९ ऋचाओं में पुत्रों के गुणों की स्तुति कर रहा है - 'अरे, तुम तीनों भुवनों के रहस्यों को जानते हो... तुम न जाओ। मेरे पास रहो... इत्यादि।' फिर ५ ऋचाओं में पुत्र अपने पिता के गुणों का स्तवन कर रहे हैं। पढ़िए ऋग्वेद - ७।३३ । पिता-पुत्रों के परस्पर समादर का यह सूक्त भारतीय संयुक्त परिवार-प्रथा का संस्तुवन एवं प्रतिनिधित्व करता है।

ऋषि आत्रेय वव्रि का समय निकट आ गया है, और वह परम प्रसन्न है। जर्मन का दार्शनिक गेटे मृत्यु को अपने सामने देखकर कह रहा हैं - Light, More Light - अर्थात् ज्योति, भूयसी ज्योति। ऋषि आत्रेय वव्रि भी अपनी मृत्यु को परम ज्योति के रूप में देखकर परम प्रसन्न है। वह अपने भूतकाल का स्मरण कर रहा है और भविष्य में होने वाली मृत्यु का स्वागत कर रहा है। वह कहता है - "मैं आत्रेय वव्रि हूँ। पृथ्वी की गोद में बैठा वैश्वानर अग्नि मेरी ढलती उम्र को देख रहा है। मैं अपने युवाकाल में पल-पल बल जुटाने में व्यस्त रहा और लोहे जैसी सुदृढ़ शत्रु-पुरियों में घुस-घुस कर शत्रुओं को ललकार-ललकार कर भूलुंठित करता रहा। मेरी परिवार बगिया में चार फूल खिले - निष्कग्रीव, बृहद्रथ, मध्वा और वाजय। मेरे ये चारों पुत्र खूब फैल रहे हैं - पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रों में। दूध से कमनीय मेरे शरीर को द्यावा-पृथ्वी ने खूब पोषा है। आज ढलती उम्र में मैं शत्रुओं से घायल हो रहा हूँ पर मेरे भीतर के अग्नि को बाहर का अग्नि नष्ट नहीं कर पाएगा। स्मशान के हे ज्वालावान् क्रव्याद् अग्नि![1] तू अपने सखा वायु के साथ चिता की राख से खेलता है। सृष्टि के हवि को वहन करने में व्यस्त तेरी उग्र, हिंसक ज्वालाएँ मेरे लिए सुखकर हों।" पढिए, ऋषि के जीवन की ये पाँच अन्तिम आत्मकविताएँ ऋग्वेद ५/१९। ये पांच ऋचाएँ मानो ऋषि के जीवन के महाकाव्य के पाँच अध्याय हैं। बताइए, गया है किसी कालिदास का ध्यान इस ऋषि के जीवनवैभव की ओर ? टटोलिए भारतीय-वाङ्मय को। ऋषि कहता है - 'मेरे भीतर के अग्नि को बाहर का अग्नि नष्ट नहीं कर पाएगा'। बताइए, यह भीतर का अग्नि कौन-सा है ? यह है प्रज्ञा-अग्नि। प्रज्ञा-अग्नि शाश्वत-अग्नि है। यह परम व्योम में रहता है-परमव्योम अर्थात् ब्रह्माण्ड।

चेतनाअग्नि (संविद्) एवं प्रज्ञाअग्नि, ये बिना समिध् के, बिना इन्धन के सदा प्रज्वलित रहते हैं। दर्शन इन्हें निराकार ब्रह्म के नाम से जानता है।

ऐसे सुख-दुःख के, रस भरे अनेक आत्मकाव्यों से 'ऋग्वेद' छलक रहा है। हमें लगता है कि संसार से भागनेवाले विरक्तों में से किसी एक ने भी सहानुभूतिपूर्वक मन्त्रात्मक चारों वेदों को पढ़ा ही नहीं है। नहीं तो वे कुछ उपनिषदों के आधार पर वेदों को आत्मचिन्तनपरक बताने

१. गार्हपत्य अग्नि, आहवनीय अग्नि, निर्मथ्य अग्नि, दक्षिणाग्नि ये चार अग्नि यज्ञ एवं हमारे व्यवहार के अग्नि हैं। क्रव्य - कच्चा मांस। ✓ अद्- खानेवाला। क्रव्याद् अर्थात् कच्चा मांस खानेवाला स्मशान की चिता का अग्नि।

की भूल न करते । आदि शंकराचार्य ने अपने चारों मठों के भावी उत्तराधिकारियों को आदेश दिया था कि – 'वैदिक धर्म अक्षुण्ण रहे । इसके लिए वे सदा सावधान रहें ।' पर कौन-सा वैदिक-धर्म ? केवल आत्म-चिन्तनपरक वेदान्त-ज्ञानपरक लोकव्यवहारशून्य वैदिक धर्म ? यह हम ऊपर कह चुके हैं कि वैदिक धर्म आत्मचिन्तनपरक नहीं किंतु लोकव्यवहारपरक है ।[१]

यों स्पष्ट है कि वेद ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा रचित हैं । फिर वेद अपौरुषेय हैं ऐसी उलटी वाणी क्यों चल पड़ी ? उलटी गंगा क्यों बही ? हमारी इस जिज्ञासा के उत्तर में डॉ. चि. ग. काशीकर लिखते हैं – 'वेदों को अपौरुषेय मानना यह एक दार्शनिक आवश्यकता थी । वेदविहित विषय को प्रामाण्य प्रदान करने के लिए वेदों को अपौरुषेय मानना पड़ा ।' डॉ. चि. ग. काशीकर के कथन से यह तो स्पष्ट ही है कि वेद वास्तव में पुरुष रचित हैं अर्थात् ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा रचित हैं पर इनको प्रमाणरूप में प्रतिष्ठित करने के लिए इनमें अपौरुषेयत्व की मान्यता थोपनी पड़ी। यह भी सर्वविदित है कि वेदों को अपौरुषेय मानने-मनवाने की मान्यता रूढीवादियों की है – लकीर के फकीरों की है । पर इस जड़ मान्यता ने लोगों को जबर्दस्त अंधविश्वास में धकेल दिया है । लोग वेदों को अपौरुषेय अर्थात् ईश्वररचित मानकर, भगवान् मानकर मत्थे चढाते हैं, प्रतिमा मानकर पूजते हैं और चन्दन भारवाही गधा जैसे केवल भार को वहन करता है, पर चन्दन की सुगंध को एवं चन्दन के मूल्य को नहीं जानता है – 'यथा खरो चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु सौरभस्य' वैसे ही मन्त्रमुखी, मन्त्रपाठी, कर्मकाण्डी-पुजारी मन्त्रों के अर्थ को बिना जाने ही अशुद्ध एवं उटपटांग पाठ करके अपना उल्लू सीधा करते हैं । जरा सोचिए, मानव के कल्याण के लिए रची गई शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान की सैकड़ों ऋषि-ऋषिकाओं के प्रकृति एवं जीवन के अनुभवों की, काव्यश्रम[२] की कितनी महीयसी पूंजी को, कितनी मूल्यवान् धरोहर को इस अंधी परंपरा ने मिटियामेट कर दिया है । मानो किसी क्रूर हत्यारे ने अपनी माताओं के स्तनों से लगे दूध पीते शिशुओं को अलग कर दिया हो । मानो रसवती वैदिक सरस्वती को कोई मरुस्थली महा-नागिन बन लील गई हो ।

वेदों का उद्देश्य

जैसाकि हमने ऊपर कहा है वेद शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के अजस्र स्रोत हैं । वेद का प्रत्येक प्राकृतिक देव – (सूर्य, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, उषा, सरस्वती, अश्विनौ, मरुद्गण, रुद्र, सोम, इन्द्र) तथा प्रत्येक ऋषि एवं प्रत्येक ऋषिका ये सभी शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान से आपूर्ण हैं । द्यु का सूर्य सृष्टि को शक्ति प्रदान कर रहा है । अन्तरिक्ष का इन्द्र सृष्टि को ऐश्वर्य प्रदान कर रहा है । पृथ्वी का वैश्वानरअग्नि सृष्टि को विज्ञान प्रदान कर रहा है । हम इन्हें धारण करें।

---

१. वेद का स्वरूप विचार, पृ. १२०, पं. मोतीलालजी शास्त्री
२. जैसे माँ उदर में शिशु का भार वहन करती है और जन्म देते समय पीड़ा का अनुभव करती है, ऐसा ही श्रम एवं ऐसी ही पीड़ा का अनुभव कवि भी करता है – 'आह से उपजा होगा गान' आह – दुःख के निःश्वास को कहते हैं ।

हम क्रियात्मक रूप में इनका उपयोग करें । हम शक्तिमान् बनें, ऐश्वर्यवान् बनें एवं विज्ञानवान् बनें । इसके लिए हम वेदों को पढें, वेदों को समझें, वेदों को दूसरों को पढ़ाएँ, वेदों को दूसरों को समझाएँ । यों जीवन के रसों को, जीवन के लिए हम और भी अधिक रसवान् करते चलें, विज्ञान को अपनी प्रज्ञा के तीक्ष्ण कुठार से और भी अधिक तीक्ष्णतर, एवं तीक्ष्णतम करके अधिकाधिक विज्ञानवान् एवं प्रज्ञानवान् होते चलें । यही है वेदों का उद्देश्य और यही है ऋषि-ऋषिकाओं का आदेश । जिन विरक्तों को शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान से भागना है उन्हें भागने दें । राजस्थानी में एक कहावत है - **'आकरा बळद री ढीळी राडी'** अर्थात् बदमाश बैल खेत में न चलता हो, रस्सी तुड़ा कर भागता हो तो छोड़ दो उसे । पर सावधान रहो कि वह कहीं हरी-भरी खेती में घुस कर नुकसान न कर बैठे । पर हम कहाँ सावधान हैं ?

वेदों का अर्थज्ञान आवश्यक

दो सप्ताह पहले मैं कबीर आश्रम, जामनगर (गुजरात) गया।[१] वहाँ कबीर मंदिर के बिचोबीच एक बड़ा पींजरा टंगा था । जिसमें एक सुंदर विदेशी बड़ा तोता मीठी वाणी में बोल रहा था - 'सतनाम-सतनाम' । तो तोते को सतनाम के अर्थ का कहाँ ज्ञान है ? 'सतनाम' का अर्थ तो सत में जीने वाला कोई बिरला कबीरा ही जानता होता है । सूखे कंडों का ढेर हो पर आग की चिनगारी न हो तो ज्वाला एवं प्रकाश उत्पन्न नहीं होंगे । ऐसे ही वेद-मन्त्र घोखे हुए मस्तिष्क में हों पर बुद्धि या भीतरी चिनगारी से उसका स्पर्श न हो तो मन्त्र प्रकाश कैसे उत्पन्न करेंगे ? मन्त्र का प्रकाश तो मन्त्रों का अर्थ जानने पर ही हो सकता है । केवल मन्त्र घोखने वाले और मन्त्रों का अर्थ न जानने वाले को लक्ष्य करके संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थ 'महाभाष्य' के रचयिता, योगदर्शन के प्रणेता और आयुर्वेद की चरक परंपरा के जनक मुनि पतंजलि कहते हैं - "सूखी लकड़ियाँ बिना अग्नि के स्पर्श के कभी नहीं जलतीं, वैसे ही प्रज्ञा-अग्नि के स्पर्श के बिना वेद-मन्त्रों के अर्थ का प्रकाश नहीं हो सकता" - अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित्' । 'ऋग्वेद' का ऋषि बृहस्पति आङ्गिरस कहता है - 'एक वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है और एक वाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता है, पर एक के आगे वाणी अपने आप को ऐसे खोल देती है जैसे कोई रत्नालंकारों से सजी सुंदर प्रियतमा अपने आप को अपने प्रियतम के आगे खोल देती हैं' -

> उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
> उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥[२]

आशय यह कि जो अपनी प्रज्ञा-अग्नि के प्रकाश में ऋचा को देखेगा, ऋचा उसके आगे अपना गूढ़ आशय, हृदय उसी तरह खोल देगी, जिस तरह कोई प्रसन्न प्रिया स्वयं को प्रिय के आगे खोल देती है ।

१. १२-१२-९९ २. ऋग्वेद १०/७१/४ ।

ऋग्वेद का ऋषि दीर्घतमा औचथ्य इसी आशय का अनुमोदन करता हुआ कहता है – 'अक्षरों में ऋचाएँ सुरक्षित हैं और ऋचाओं में देव बैठे हैं । यदि हम ऋचाओं का अर्थ नही जानेंगे तो ऋचाएँ हमारा क्या कर लेंगी ? पर यदि हम ऋचाओं को जान लेंगे तो ऋचाओं में बैठे देव हमें निहाल कर देंगे –

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥[१]

दुःख है कि हमारे भारतीय कवि मनीषियों का ध्यान अक्षरों में सुरक्षित ऋचाओं और ऋचाओं में बैठे देवों की ओर नहीं गया और पुराणों तक ही सीमित रहा ।[२]

वेद के प्रत्येक मन्त्र के तीन तरह से अर्थ होते हैं – आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक। यह मान्यता भ्रमपूर्ण है । वेद काव्य हैं । अतः अभिधा, लक्षणा, व्यज्जना, ध्वनि, रस, भाव, अलंकार इत्यादि काव्य के तत्त्वों के आधार पर मन्त्रों के अर्थ होते हैं । वेदों का अधिकांश मन्त्रभाग अभिधात्मक है । शब्द से जो सीधा अर्थ निकलता है वह अभिधार्थ है । अभिधात्मक मन्त्र एक ही अर्थवाले होते हैं । जो मन्त्र उत्तमकाव्य के उदाहरण हैं वे लक्षणा, व्यज्जना, ध्वनि, रस एवं भावमूलक हैं । उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति जैसे अलंकारों का ऐसे मन्त्रों में सहज ही प्रयोग मिलता हैं । ऋग्वेद में कई ऋषियों के मन्त्र उत्तमकाव्य की कोटि के हैं । इस सन्दर्भ में ऋषि दीर्घतमा औचथ्य का कविताभाग ऋग्वेद १।१४० से १६४ तक के २५ सूक्त पठनीय हैं और इसमें भी १६४ वाँ सूक्त तो वैदिककाव्य ही नहीं अपितु विश्वकाव्य में सिरमौर है । वेदों में यज्ञ संबंधी कई मन्त्र द्व्यर्थक हैं – लौकिक यज्ञपरक और सृष्टि-यज्ञपरक । फिर देवता संबंधी कई मन्त्र भी अनेकार्थी हैं । विद्वान् अपनी-अपनी दृष्टि से अलग-अलग अर्थ करते हैं। जैसे ऋग्वेद ४।५८।३।

मैं यहा वेदार्थ संबंधी एक और तथ्य प्रस्तुत करना चाहता हूँ और वह यह कि साम्प्रदायिक-जन अपने सम्प्रदाय की पुष्टि में वेदमन्त्रों को कामधेनु कह कर खींचतान करके किसी भी तरह मनमाना अपने प्रयोजन का अर्थ निकाल लेते हैं, यह बड़ा पाप है, अनर्थ है । यह न केवल अर्थ-कर्ता के लिए एवं सम्प्रदाय के लिए अपितु निर्दोष पाठकों के लिए भी अनर्थकर होता है । गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है । पाणिनीयशिक्षा ऐसों के लिए दण्ड का विधान कर रही है – सर्वनाश, मृत्यु –

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ॥

पाणिनीयशिक्षा-५२

१. १/१६४/३९

२. भास, कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, पण्डितराज जगन्नाथ इत्यादि संस्कृत के कवि ।

कई आधुनिक स्वार्थी साम्प्रदायिक भाष्यकारों ने वेदों के साथ बड़ा खिलवाड़ किया है। अर्थ का अनर्थ किया है। कई साम्प्रदायिक भाष्य तो ऐसे हैं कि उनका एक मन्त्र भी ऋषि अनुकूल नहीं है।

ऋग्वेद के काव्योपयोगी आधार -

जैसाकि हमने पहले कहा है कि ऋग्वेद एक काव्यपुरुष है। यह अपने आप में एक पूर्ण काव्य है। पर इसमें जिन कवि-कवयित्रियों की ऋषि-ऋषिकाओं की कविताएँ संगृहीत हैं, उनके जीवन भी निश्चित ही काव्य के आलंबन हो सकते हैं। साथ ही इनके द्वारा निरूपित अनेक देवचरित्र, प्रसंग एवं घटनाएँ भी काव्य के आधार हो सकते हैं। सहृदय कवि-मनीषियों का ध्यान इस दिशा की ओर आकर्षित हो, इसके लिए मैं यहाँ कुछ ऋषि-ऋषिकाओं के नाम, चरित्रों एवं प्रसंगों का उल्लेख कर रहा हूँ – जैसे ममता का पुत्र ऋषि दीर्घतमा औचथ्य, ऋषिका रोमशा एवं ऋषि भावयव्य, ऋषिका लोपामुद्रा एवं ऋषि अगस्त्य की रतिक्रीडा, ऋषि गृत्समद शौनक का याज्ञिक जीवन, ऋषि विश्वामित्र गाथिन का शौर्य, ऋषि विश्वामित्र एवं नदियों का संवाद, ऋषि वामदेव गौतम का अभावग्रस्त, संघर्षमय एवं गौरवपूर्ण जीवन, ऋषि आत्रेय वव्रि की अन्तिम कामना, ऋषि श्यावाश्व आत्रेय का प्रेमदग्ध जीवन एवं प्रिया-प्राप्ति, आदर्श वैदिक सन्नारी शशीयशी की पति परिचर्या, युवा ऋषि पायु भारद्वाज का अजेय दुर्द्धर्ष साहसी जीवन एवं इसका आयुधाभिमन्त्रण, ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ एवं इसके पुत्रों का परस्पर समादर भाव, ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज का भव्य द्विबर्हित्व जीवन, ऋषि मनु-वैवस्वत् का यमयमी संवाद, प्रेम-युगल पुरुरवा एवं उर्वशी, देव शुनी (कुतिया) सरमा, वीर जामदग्न्य राम (परशुराम), भाववृत्त देवतापरक (नासदीय) सूक्त, कामायनी श्रद्धा सूक्त, ऋभुगण के जीवनोपयोगी आविष्कार, सूर्या-विवाह, अक्षकितवः (जुंआ खेल) इत्यादि।

यों सहृदय कवियों एवं पाठकों को ऋचा-स्रष्टाओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का ख्याल आ ही जाता है।

---

३. वैदिकेतर एवं वेद-विरोधी मत-पंथ

वैदिकयुग की महत्ता

वैदिकयुग भारतीय संस्कृति का प्रभात था । प्रभात की ही भाँति यह आनंद एवं उल्लास में चहक-महक रहा था । इस काल में देवों की उपासना एवं जीवन दोनों इस तरह एकमेक थे कि उन्हें अलग से देखा ही नहीं जा सकता था । यज्ञ जीवानुराग का पर्याय था । बल एवं बुद्धि में मानो ऋषि-ऋषिकाओं की देवों के साथ होड़-सी लगी हुई थी । बलार्जन, विजिगीषा, दीर्घजीवन, रसोपभोग, देव-स्तवन एवं यज्ञ, ये ही थे ध्येय इस काल के । न दैन्य था, न पराजय थी, न पलायन था, न परलोक था न मोक्ष था । इसी जीवन में शान्ति एवं सुख, यही था मोक्ष। इसी जीवन को शोभन कर्मों द्वारा सँवारना, यही था कर्तव्य ।

वैदिक एवं औपनिषदिक विचारधारा में अन्तर तथा वैदिकेतर मत-पंथों पर उपनिषदों का प्रभाव

वैदिकयुग के अन्तिम चरण में उपनिषद् ज्ञान, वैराग्य, संन्यास, मोक्ष, परलोक, पुनर्जन्म एवं कर्मफल के विचार लेकर आए । ये विचार वेदों से कतई मेल नहीं खाते हैं । ऋग्वेद में आत्मा शरीर को कहा गया है[१] पर उपनिषदों में चेतन तत्त्व, अतीन्द्रिय, निराकार तत्त्व आत्मा है । ऋग्वेद में पुनर्जन्म का कही उल्लेख नहीं है । ऋषि इसी जीवन को प्रथम एवं अन्तिम मानते थे पर उपनिषदों ने पुनर्जन्म की मान्यता सुदृढ़ कर दी । भारत में वैदिक युग के बाद वैदिकेतर जितने भी दर्शन, वेदान्त[२] संप्रदाय, मत-पंथ अस्तित्व में आए, उन सभी पर उपनिषद् काल के उपर्युक्त विचारों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव है ।[३]

वैदिकेतर मत-पंथों की व्याप्ति

ई. सन् की छठी सदी पूर्व से अर्थात् बुद्ध से आज तक वैदिकेतर मत-पंथों की व्याप्ति है । इनमें दो प्रथम विचारणीय हैं – बौद्धमत एवं जैनमत । इन्होंने स्पष्ट कहा कि हम वेदों को नहीं मानते । ऐसे मत-पंथों को ही लक्ष्य करके स्मृतिकार मनु ने कहा – **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** – 'मनुस्मृति' । जो वेदनिन्दक हैं वे नास्तिक हैं । आस्तिक वह है जो वैदिक धर्म का पालन कर रहा है ।

बौद्ध-मत

ई. पू. ५६३में शाक्यवंश के क्षत्रिय राजा शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ को चिन्तन द्वारा बोधिवृक्ष के नीचे चार सत्यों का बोध हुआ और ये बुद्ध कहलाए । दुःख पहला सत्य है, क्योंकि संसार दुःखमय एवं क्षणिक है । दुःख का कारण दूसरा सत्य है । तृष्णा एवं वासना दुःख के कारण हैं । निरोध तीसरा सत्य है । तृष्णा और वासना को दबाना निरोध है । निरोध का मार्ग चौथा सत्य है । मध्यम मार्ग निरोध का मार्ग है । ये चारों संयमित जीवन के आचार हैं । बुद्ध द्वारा स्थापित धर्म बौद्ध-मत कहलाया । बुद्ध क्षत्रिय थे । अतः राजाओं का उन्हें भरपूर प्रोत्साहन एवं आश्रय मिला । एक काल में तो यह भारत का राजधर्म भी बना पर भारतीय मानस के लिए सुपाच्य न होने से शनैः-शनैः भारत में से यह पूरी तरह साफ हो गया । बौद्ध-मत के ग्रन्थ

१. ऋग्वेद १/१४९/३ **सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा**, यह अग्नि सूर्य की भाँति देदीप्यमान एवं अनेक शरीर वाला है। ऋषि दीर्घतमा औचथ्य । २. साधारण जन को भी समझ में आ जाए वह वेद और पण्डित के मन में भी उलझन बनी रहे वह वेदान्त । रूपक में कहें तो वेद राज मार्ग हैं तो वेदान्त भूल भूलैयावाली गली-कूची । ३. उपनिषदों की विचारधारा के प्रभाव में पनपे आज तक के समस्त मत-संप्रदायों ने मनुष्य को दीन-दुर्बल, हतवीर्य, निस्तेज, क्लीब, अकर्मण्य एवं अव्यावहारिक ही बनाया है पर जीवन में जूझ कर उसे उज्ज्वल बनाने के लिए तो मनुष्य को वीर्यवान्, दुर्द्धर्ष साहसी, प्रचण्ड पराक्रमी एवं अथक कर्मठ होना पडता है । डॉ. भ्रमरलाल जोशी ।

त्रिपिटक के नाम से संगृहीत हैं। सुत्त, विनय और अभिधम्म इन तीन प्रकार के ग्रन्थों का समूह ही त्रिपिटक हैं। त्रिपिटक की भाषा पाली प्राकृत है।

जैन-मत

ई. पू. ५९९में लिच्छवी गण के संघ के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के पुत्र वर्धमान को बुद्ध या अर्हत् ने यतिमत में दीक्षित किया। फिर १२ वर्ष तक जंगल में तप करने के फलस्वरूप इन्हें सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ। ये जिन हो गए। जिन अर्थात् कर्मजयी, वासनाजयी। जयी होने के कारण ये महावीर कहलाए। इन्होंने अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य इन व्रतों का उपदेश दिया। इस मत में त्याग एवं तप का अतिरेक है। वस्त्र तक त्याग देना और दिगम्बर (नग्न) हो जाना तथा अन्न-जल को त्याग कर जीवन समाप्त करना (संथारा लेना) इस धर्म में परम श्लाघनीय माना गया है। इस मत के ग्रन्थ आगम कहलाते हैं। ये ग्रन्थ अर्धमगधी प्राकृत में रचित हैं। भारत में आंशिक वैश्यों द्वारा मान्य इस जैन-मत के तीर्थ एवं मंदिर राजस्थान एवं गुजरात में विशेष हैं।

वैयक्तिक यम-नियम पर आधारित बौद्ध एवं जैन मत किसी भी मनुष्य, समाज एवं राष्ट्र को बलशाली एवं आत्मनिर्भर बनाने में सक्षम नहीं हैं।

पैराणिक-मत

बौद्ध एवं जैन मतों की भाँति पैराणिक मत किसी एक व्यक्ति द्वारा स्थापित नहीं है किन्तु यह अनेक अवतारों, देव-देवियों, मत-पंथों, संप्रदायों का समूह है और इनके स्रष्टा हैं पुराण। पुराण को अंग्रेजी में मिथ (myth) कहते हैं। जिसका अर्थ है काल्पनिक कथा, झूठी बात।

पुराणों में अवतारों एवं देव-देवियों की कल्पित कथाएँ हैं। ई. सन् की तीसरी शती से १२वीं शती तक पुराण रचे गए। पुराण अठारह हैं। इनके रचनाकार व्यास कहे जाते हैं, पर विद्वानों का मत है कि व्यास नामक कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं है। व्यास या तो जातिवाचक नाम है या फिर किसी गद्दी विशेष का नाम है। डॉ. चि. ग. काशीकर लिखते हैं – "न पुराण का रचयिता कोई व्यास हुआ है और नहीं चारों वेदों का संपादन करने वाला ही कोई व्यास हुआ हैं।"[१]

पुराणों में विष्णु के चौबीस अवतारों एवं अनेक देव-देवियों की कथाएँ हैं। अवतारों में राम एवं कृष्ण मुख्य हैं। राम ऐतिहासिक नहीं हैं [२]। राम पर १९ प्राचीन रामायणें हैं तथा प्रत्येक पुराण में रामकथा है, पर प्रत्येक में राम का चरित्र अलग-अलग है अर्थात् रचनाकार ने अपनी कल्पना के अनुसार राम के चरित्र का वर्णन किया है। कृष्ण द्वारकावासी आंशिक ऐतिहासिक हैं[३]। व्रज

(१) पत्र ५-१-९९, पूना, चि. ग. काशीकर।

(२) 'रामकथा ऐतिहासिक नहीं कल्पित है।' 'कृष्णायन' भूमिका द्वारकाप्रसाद मिश्र। (२) 'रामायण महाकाव्य है, इतिहास नहीं। अतः रामचन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है।' डॉ चि. ग. काशीकर (पूणे) पत्र ५-१-९९ (२) 'राम द्वारा वैदिक ऋषि परशुराम एवं वैदिक पं. ब्राह्मण रावण को पराभूत करवाने की मुख्य घटनाओं के आधार यह स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियों को हीन एवं क्षत्रियों को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए ही रामकथा लिखवाई गई है। 'हिन्दी कृष्णकाव्य में भक्ति एवं वेदान्त' पृ. १०, आचार्या डॉ. सन्तोष पाराशर।

(३) 'हिन्दी कृष्णकाव्य में भक्ति एवं वेदान्त' पृ. १-२४, आचार्या डॉ. सन्तोष पाराशर

में लीलाएँ करने वाले राधारमण, गोपीजनवल्लभ एवं कंसवध तक के कृष्ण कल्पित हैं । श्रीमद्भागवत में कृष्णकथा वर्णित है ।

भारत में दो तरह की उपासनाएँ प्रचलित हैं – साकार एवं निराकार।

भारत में प्रचलित साकार-निराकार संप्रदाय

भारत में प्रचलित साकारोपासक मुख्य संप्रदाय इस प्रकार हैं (१) कृष्णोपासक संप्रदाय - जैसे-माध्व, निम्बार्क, हरिदासी, वल्लभ, राधावल्लभ एवं गौड़ीय । (२) शाक्तसंप्रदाय - जैसे कौल-मार्ग, मनुसंप्रदाय, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, स्कन्ध, शिव, दुर्वासा इत्यादि । (३) शैव-संप्रदाय जैसे काश्मीरी-शैवसंप्रदाय, वीर शैव-संप्रदाय इत्यादि । शैव-संप्रदाय वास्तव में शक्ति से ही प्रदीप्त हैं । (४) गाणपत्यसंप्रदाय । (५) रामोपासकसंप्रदाय - जैसे रामानुजसंप्रदाय, विष्णूपासकसंप्रदाय या श्रीसंप्रदाय । यही आगे चलकर वैरागीसंप्रदाय या अवधूतसंप्रदाय हो गया ।

निराकार के उपासक संप्रदाय ज्ञान प्रेम एवं शुद्ध चरित्र पर आधारित हैं । भारत में प्रचलित निराकार की उपासना के मुख्य पंथ इस प्रकार हैं – कबीर, नानक, दरिया, बावरी, सतनामी, चरणदासी, धामी, बाबालाली, राधास्वामी, शिवनारायणी, सूफी इत्यादि ।[१]

वैदिकेतर युग की सामाजिक स्थिति

वैदिकयुग में समाज यज्ञ से जुड़ा था पर वैदिकेतर युग में यह अनेक मत-पंथों, संप्रदायों में विभक्त हो कर छिन्न-विच्छिन्न हो गया । इस युग की उपासनाएँ समाज को जीवन की ओर नहीं, पर इसके विपरीत विरक्ति, परलोक एवं मोक्ष की ओर अभिमुख करती हैं । डॉ. जे. जे. शुक्ल लिखते हैं 'मेरे मत में भारत एवं इसकी हिन्दू-सामाजिक व्यवस्था को सबसे अधिक हानि यदि किसी ने पहुँचाई है तो वह है सोलहवीं सदी की पौराणिकी भक्ति । भक्ति का रूप कुछ इस प्रकार का रहा और वर्तमान में भी वैसा ही है कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को इसने इस भाँति छिन्न-विच्छिन्न कर दिया है कि हिन्दूसमाज अराजकता, अव्यवस्था की उस चरम दशा तक पहुँच चुका है कि इसके अस्तित्व के आवश्यक सभी मूल्य समूल नष्ट हो चुके हैं ।'[२] अर्थात् इस उपासना ने समाज के लिए विष का काम किया है । 'हमें भजो । हमें रटो । हमारी भक्ति करो । हम तुम्हारा योगक्षेम करेंगे । जब पुकारोगे, तब आ जाएँगे । यहाँ भी हम हैं और ऊपर भी हम हैं । वहाँ तुम्हें हम अपनी लीलाओं में स्थान देंगे' । कल्पित देवों के ऐसे वचनों से आश्वस्त-विश्वस्त समाज क्यों बल अर्जित करेगा ? क्यों हाथ पैर हिलाएगा ? क्यों सावधान

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ.२६४, काशीनगरी प्रचारणी सभा, काशी

2. In my humble opinions the greatest damage done to this country as well as Hindu Social organisation is that done by the sixteenth century Bhakti movement. Bhakti prectised in the manner in whilch it is done at present will blow away the social frame work, will land the society in the utmost chaos and disorder and ultimetly to annihilation of all values necessary for survival as well as progress - J. J. shukla. professor of philoshopy, university dept. of pholosophy, Gujarat university.

रहेगा ? वह तो राजभोग की मस्त सुगंध में, शीतल छाया तले, बैठ जुगाली करेगा और मुटियाएगा ।

सोक्रेटीस और यूरोप का समाजहितलक्षी तत्त्वज्ञान

ऐसे ही साकार देव-देवी यूरोप में भी किसी समय थे । ई.सन् पूर्व ५०० में ग्रीस के पवित्र नगर डेल्फी में एपोलो देव था । एथेन्स (ग्रीस) की अधिष्ठात्री देवी एथेनी थी । जो भाला एवं शिरस्त्राणधारिणी थी । हीरो देवी थी । यूरोप के सोक्रेटीस, प्लेटो इत्यादि तत्त्वचिन्तकों एवं दार्शनिकों ने समाज को शुद्ध, तर्कयुक्त बुद्धि-धर्म की समझ दी । ई. सन् पूर्व ४६९में एथेन्स में जन्मा महान् तत्त्वचिन्तक सोक्रेटीस जीवनभर एथेन्स की गली-गली, घर-घर नंगे पाँव घूमा और लोगों से कहता रहा - "बंधुओ, देवता मनुष्य की कल्पना है । न देवता मनुष्य का भरण-पोषण कर सकता है और नहीं देवता किसी की रक्षा ही कर सकता है । अतः तुम स्वयं बलवान् बनो, सावधान रहो ।[१]' एथेन्स के लोगों को देवनिन्दक बनाने के एवं बहकाने के अपराध में एथेन्स की लोकसंसद् एकेलेझिया ने सोक्रेटीस को मृत्युदंड दिया और उसे विषपान करना पड़ा पर उसका विषपान नीलकंठ शिव का विषपान हो गया । सज्जन को, निरपराधी को दण्ड देने के प्रायश्चित्त में, पश्चात्ताप की अग्नि में सारा यूरोप कुन्दन हो गया । जो अपने जीवनकाल में सोक्रेटीस कहता रहा, उसकी मृत्यु के बाद लोगों ने अक्षरशः उसके उपदेश को स्वीकार कर लिया । सोक्रेटीस तत्त्वज्ञानी होने के साथ-साथ स्वयं ऐसा बलशाली था कि एक ही प्रहार में बड़े से बड़े पशु की बलि करता था, शिरच्छेद करता था । उसने कई युद्धों में भाग लिया था । वह प्रतिदिन अपनी तलवार, भाला, ढाल, शिरस्त्राण साफ करता था और बलि देता था। उसने दो विवाह किए थे और दोनों पत्नियों के साथ रहता था । उसके तीन लड़के थे । एथेन्स और स्पार्टा ही क्या पूरे यूरोप के राजे-महाराजे, कलाकार, पंडित, उसकी चौखट पर नमस्कार करने आते थे। तुलना कीजिए जगत् को असत्य एवं क्षणभंगुर कहने वाले भारतीय तत्त्वचिन्तक शंकराचार्य की और सोक्रेटीस की । सोक्रेटीस का शिष्य प्लेटो भी तत्त्वचिन्तन एवं बल में सोक्रेटीस के जितना ही समर्थ था । तात्पर्य यह है कि यूरोप के सोक्रेटीस जैसे दार्शनिकों ने बुद्धिपूर्वक, तर्कपूर्वक, युक्तिपूर्वक लोगों को ज्ञान दे कर अपनी धरती से सगुण देव-देवियों को, पौराणिक कथाओं को निःशेष कर दिया, साफ कर दिया ।[२]

सच यह है कि यदि समाज को उन्नत होना है तो उसे अंधश्रद्धा एवं रूढ-धर्म छोड़ने ही होंगे । जैसे मां के गर्भ में फिर से प्रविष्ट नहीं हुआ जाता । वैसे ही मनुष्य ज्ञान का फल चख लेने के बाद अंधश्रद्धा एवं रूढ मान्यताओं के छिलके (आवरण) में वापस नहीं घुसता ।

सोक्रेटीस ग्रीस (यूनान) का नागरिक था । सभी ग्रीस नागरिकों के लिए युद्ध-शिक्षण एवं युद्ध अनिवार्य था । ग्रीस के वीरों की तो बात ही निराली थी । वे ढाल, भाला एवं शिरस्त्राण के साथ युद्ध में जाते थे । वे विजयी होकर ढाल के साथ लौटते थे या फिर वीरगति पाकर ढाल पर लेटे-लेटे लौटते थे । हमारे ऋषि वामदेव गौतम (ऋग्वेद मण्डल ५) की भाँति ग्रीस-वीरों के लिए युद्धभूमि क्रीडास्थली थी, जहाँ वे शस्त्रों के साथ खेलते थे । क्या ऋषियों के बाद बौद्धों ने, जैनियों ने,

(१) सोक्रेटीस, मनुभाई पंचोली, दर्शक ।
(२) यूरोपीय दर्शन, रामावतार शर्मा ।

पुराणों ने, अवतारों ने, विरक्तसंन्यसियों ने, शङ्कराचार्यों ने, सन्तों ने, जगद्गुरुओं ने, गोस्वामियों ने, भारत में ऋषियों जैसी एवं ग्रीस जैसी वीर्यवती, प्रज्ञावती परंपरा को जन्म दिया है ? या फिर वैदिक वीर्यवती, प्रज्ञावती ऋषि-परंपरा को अपने स्वार्थ के लिए एवं अपने अहं को पुजवाने के लिए इन्होंने सहेतु, सप्रयोजन नष्ट किया है, दबा दिया है ? आज निराश, दुर्बल एवं अन्धविश्वास में भटकता भारत-राष्ट्र इनसे उत्तर माँगता है । बंदरिया जैसे मृत बच्चे को अपनी छाती से चिपकाए रहती है वेसे हम कब तक इनको छाती से चिपकाए रखेंगे ? पत्थर को पीठ पर बाँधकर गहरे और वेगवान् जल प्रवाह को पार करना संभव ही नहीं हैं और डूबना तो निश्चित है ही ।

पैराणिक युग हिन्दू-धर्म का ह्रासयुग

जर्मन के सुप्रसिद्ध वैदिक पं. थ्योडोर गोल्ड स्टूकर पौराणिक युग को हिन्दू-धर्म का ह्रासयुग (पतनयुग) कह रहे हैं और यह भी कह रहै हैं कि भारतीयों ने 'ऋग्वेद' के वीर्यवत्तर मार्ग का अनुसरण नहीं किया है । उसीका फल है भारतीयों का पतन - "ऋग्वेद के मन्त्रों का पक्षपातरहित परीक्षण हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि भारतवर्ष में धर्म ने इस वीर्यवत्तर मार्ग का अनुसरण नहीं किया ।"[१] "हिन्दू धर्म का पौराणिक युग लोकप्रिय संप्रदाय की दृष्टि से एक ह्रास का ही युग कहा जा सकता है ।"[२]

नानकपंथ - सिखपंथ

उपर्युक्त पंथों में निराकार ज्ञान का उपासक नानकपंथ एक अपवाद है । ऋषियों की भाँति यह बल एवं आयुध से जुड़ा पंथ है । लाहोर के पास तिलवंडी गाँव में जन्मे नानकजी ने कबीरपंथ से प्रभावित हो कर उदार एवं शान्त उद्देश्य से ज्ञान के प्रचारार्थ नानकपंथ की स्थापना की पर मुसलमानों के कट्टरपन एवं जुल्मों से इसमें बदलाव आ गया । जल की शीतल धारा खड्ग की धार में बदल गई । मुसलमानों ने इस पंथ के कई गुरु मरवा दिए और बच्चों को जीवित ही दीवार में चुनवा दिया । इसके प्रतिशोध की ज्वाला में गुरु तेगबहादुर के पुत्र गुरु गोविंदसिंह ने नानकपंथ का रुख ही बदल दिया । नानकपंथ सिखपंथ के नाम से नये स्वरूप में सामने आया । कच्छ, केश, कंघा, कड़ा और कृपाण साथ में रखना सिखपंथ में अनिवार्य हो गया । यही वीर सिखों की वर्दी थी । जैसे मुँह में उज्ज्वल मन्त्र और हाथ में धारदार परशु यह ऋषियों की पहचान थी वैसे ही ये पाँच चीजें सिखों की पहचान हो गई । गुरु गोविंदसिंह सिखों के दसवें और अन्तिम गुरु थे । इन्होंने अपने बाद गुरु जैसी व्यक्तिपूजा को बंद करवा दिया और अपने पंथ के ग्रन्थ 'गुरुग्रन्थसाहब' को ही गुरु मान लिया । आज भारत में आश्रम, मठ, मंदिर बना कर बैठे अकर्मण्य, तूंबी-वाले और जगद्गुरु कहलवाने वाले, गुरु गोविंदसिंह से प्रेरणा लें तो इसमें उनका और राष्ट्र का दोनों का भला है ।

इस सिखपंथ के वीर सिखों ने अत्याचारी मुसलमानों पर कहर ढा दिया । इन्होंने अपनी कृपाण से पंजाब में से चुन-चुन कर मुसलमानों को साफ किया और ये बढ़ते-बढ़ते काबुल तक पहुँच गए थे । हिन्दुओं में वीरता जाग्रत हो, इसके लिए गुरु गोविंदसिंह ने दुर्गापूजा की

१. हिन्दुओं की प्रबुद्ध रचनाएँ, पृ. १९
२. हिन्दुओं की प्रबुद्ध रचनाएँ, पृ. १४५

उपासना का प्रचार किया और 'दुर्गासप्तशती' का हिन्दी पद्य में अनुवाद किया। ये साहित्यकार भी थे। कलम और तलवार दोनों के ये धनी थे।[१] इनके हिन्दी में रचित ग्रन्थ हैं – सुनीतिप्रकाश, सर्वलोकप्रकाश, प्रेममार्ग और बुद्धिसागर। भारतभर में लाखों की संख्या में फैले पंडे, पुजारी, कथाभट्ट, गोसाईं, गोस्वामी गुरु गोविंदसिंह के जीवन से सबक लें तो शोभन होगा। देश की बहुत सारी गंदगी साफ हो जाएगी।

हमारे तीर्थ

हमारे तीर्थ कैसे हैं। इसका काव्यात्मक चित्र यहाँ मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। मैं गत ८ वर्षों से अपने आदरणीय मित्र श्रेष्ठिवर श्री रामगोपालजी गाड़ोदिया (दिल्ली) को संगति देने वर्ष में दो बार वृन्दावन जाता हूँ। मैंने अपने एक पत्र दि. १६-११-९५में वृन्दवन के अनुभव का काव्यात्मक वर्णन किया था। जिसके ५ छंद इस प्रकार हैं –

और
आज भी[२]
गटर-सी गंदी यमुना,
अपने किनारों को घृणा से देखती,
वृन्दावन-मथुरा-व्रज के पंडे-पुजारियों, व्रजवासियों के मलमूत्र को,
गर्भस्थ शिशु की भाँति सहेजती-समेटती,
कुष्ठ-गलिता, अभिशप्ता वृद्धा-सी,
अपने दुर्भाग्य को रोती-पीटती,
लकुटिया टेक सरकती होगी, संगम की ओर ॥७॥
और
आज भी,
गोवर्धन, बरसाना, नंदगाँव, गोकुल, व्रज-वृन्दावन के,
गीध से लोलुप, भेड़ियों से हिंसक, रक्तपिपासु,
पंडे, चौबे, गुसाई, गोस्वामी,
निरीह यात्रालुओं पर झपट, नोंच-नोंच खाते होंगे ॥८॥
और
आज भी,
व्रज-वृन्दावन में नये-नये चित्रकूटों, मंदिरों के कूट शिखर,
मवाद-पीव बहते-झरते,
मां धरती के फोड़ों से उठते होंगे ॥९॥
और

१. हिन्दुत्व, रामदास गौड़ पृ. ७३५, ७३६, ७३७
२. आज भी, अर्थात् जब, मैं अहमदाबाद में हूँ तथा गाड़ोदियाजी दिल्ली हैं तब भी।

आज भी,
व्रज-यमुना की बदबू में,
मनुपुत्र-मानव
धर्मान्ध मदारी की 'राधे-राधे' की डुगडुगी पर
जानवर बन मटक-मटक नाचता होगा ॥१०॥
और
आज भी,
व्रज-वृन्दावन के माया में लिपटे-चिमटे,
भागवती-रामायणी कथाभट्ट,
सुरसा के मुख से गहरे, अपने खप्पर को
हिन्दुत्व के भोलेपन को थपथपाकर
छप्पन भोगों से भरने में तत्पर होंगे ॥११॥

यह न केवल वृन्दावन-मथुरा अपितु भारत के लगभग सभी हिन्दू-तीर्थों की स्थिति है। कवि दुष्यन्तकुमार की एक मार्मिक उक्ति है -

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता।
हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर ठिकाने आएंगे ॥

भारतीय धर्मसाधना एक भवाई

गुजरात में एक लोकनृत्य है भवाई। हिन्दी में इसको नौटंकी, पंजाबी में स्वांग एवं मराठी में तमाशा कहते हैं। विचित्र अधनंगी वेश-भूषा, अनर्गल-अपशब्दों का शोर-बकोर-कोलाहल और स्वच्छन्द उछलकूद, यह है भवाई। बुद्धकाल से, गत ढ़ाई हजार वर्षों से ठीक ऐसी ही भवाई भारतीय धर्मसाधना में हो रही है। पश्चिम के सभ्य समाज के सामने हम भी स्वयं को सभ्य कहते हैं ? घर-घर जगद्गुरु, गली-गली भगवान्,[१] मत-पंथ-संप्रदाय। बाद में प्रकट हुआ हर मत-पंथ-संप्रदाय, भगवान् पहले वाले को नीचा और स्वयं को महान् बता रहा है। कहीं तो ब्रेक हो। अभी-अभी एक सर्वोपरि भगवान् और प्रकट हो गए हैं।

क्या यह संभव है कि सभी मिल कर एक एकान्त अरण्य को विरक्तों के पवित्र आश्रमों का स्वरूप प्रदान करें। जहाँ सभी मत-पंथ-संप्रदायों के दूर-दूर आश्रम हों। उसकी एक अलग से परिचय पुस्तिका हो। फिर जिसको जिस प्रकार की जिज्ञासा हो, वह तत्संबन्धी आश्रम में जाए। आश्रम का अर्थ है, जो पूरी तरह श्रम पर आधारित है। **आसमन्तात् श्रमःआश्रमः।** अतः आश्रमों को खेत भी दिए जाएं। मठ-मंदिरों की व्यवस्था समाज अपने हाथ में ले ले क्योंकि विरक्त तो निष्काम हैं। इन्हें ज्ञान एवं मोक्ष चाहिए। ज्ञान से ये संतृप्त हों। कैसे भी हो, कुछ भी हो, धर्म के नाम पर चल रही व्यावसायिकता, दूकानदारी समाप्त होनी चाहिए।

---

१. "भारत में वर्तमान में ९५ के लगभग भगवान् हैं। जिनको मैं जानता हूँ। जिनमें से ४, ५ तो अभी-अभी मरे हैं।" श्री सच्चिदानन्दजी महाराज, दन्ताली, व्याख्यान, १७-१२-२००० टेगोर होल, अहमदाबाद-७

पुराणों में वैदिक देवों एवं ऋषियों का हीन-वर्णन

बौद्ध-मत एवं जैन-मत की भाँति पुराणों ने वेदों को नकारा नहीं पर अपने अवतारों एवं देव-देवियों को ऊपर उठाने की सीढ़ी बना लिया। वेदों को स्तुतिपाठक चारण बना लिया। श्रीमद्भागवत में प्रलय के अंत में श्रुतियाँ (वेद) भगवान् विष्णु को स्तुतिपूर्वक सृष्टिकर्म में प्रवृत्त होने के लिए जगा रही हैं। ब्रह्मा के चारों मुख से चारों वेद निकले। सैकड़ों ऋषियों के काव्यश्रम वेदों का कैसा तमाशा बनाया है सूतों ने ?[१] इतना ही नहीं, वैदिक देवों एवं ऋषियों को पुराणों में अवतारों, देव-देवियों का अनुचर तथा हीन चित्रित किया गया है।

इन्द्र वैदिक देवों में सर्वश्रेष्ठ है। यह द्यु के सप्त आदित्यों में से एक है।[२] यह अन्तरिक्ष की मुख्य देवता है। नेमि में अरों की भाँति यह समस्त चर-अचर के साथ संलग्न है।[३] मर्त्यावाक् (सृष्टि की वाणियाँ) इन्द्र की माया (बुद्धि) है तथा अमृतावाक् (सूर्यादि देवों में उत्पन्न वाणियाँ) स्वयं इन्द्र है। विश्व की प्रज्ञासृष्टि इन्द्र है। ऋक् एवं साम इन्द्र के दो अश्व हैं।[४] ब्रह्माण्ड के केन्द्र की नाभि में मूल-जीवनशक्ति है, जो सर्वत्र व्याप्त एवं अज्ञात है। यह अज्ञातशक्ति ही इन्द्र है। तभी इन्द्र कहता है – 'अरे, मेरे एक रोवें को भी कोई माप नहीं सकता है। मेरे एक रोवें की भी कोई थाह नहीं ले सकता है' – 'मम लोमापि न मीयते।[५] यों इन्द्र-भक्त वैदिक ऋषियों ने ब्रह्माण्ड के समस्त ऐश्वर्य के साथ इन्द्र को जोड़ दिया है। इन्द्र के यशोगान में ऋषियों की सर्वाधिक ऋचाएँ निछवर हैं। ऐसे महामहिमावान् सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव इन्द्र को पश्चिम के पण्डित भक्तिपूर्वक अंजलि प्रदान करते हुए इसे भारतीयों का कुलदेव, अभिभावक एवं रक्षक मानते हैं Indra is the tutelary God of the Aryas. ऐसे इस इन्द्र को श्रीमद्भागवत् में कृष्ण द्वारा पराजित दिखाकर इसे अनुचरों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है।[६] यह सभी जानते हैं कि शत्रुपक्ष के सबसे बड़े को पराजित कर देने मात्र से ही उसका सर्वस्व विजेता की पदधूलि हो जाता है। इन्द्र को पराजित दिखाने के पीछे भी यही दुर्भावना छिपी है कि अवतार कृष्ण श्रेष्ठ है और वेद, वेदों के देव एवं ऋषि क्षुल्लक हैं, पौराणिक अवतारों के अनुचर हैं, क्षुद्र हैं। पुराणपंथी हिन्दू इन्द्रदमन या इससे मिलता-जुलता अपना नाम रखते हैं। यह वेद, हिन्दुत्व एवं भारतीय संस्कृति का तिरस्कार है। श्रीमद्भागवत में दो वैदिक ऋषियों की निन्दा भी हमारे ध्यान में आई है। ऋग्वेद षष्ठ मण्डल का द्रष्टा है ऋषि बार्हस्पत्य भरद्वाज। इसने षष्ठ मण्डल के ७५ सूक्तों में से ५९ सूक्त तथा ७६५ ऋचाओं में से ५२९ ऋचाएँ रची हैं। यह ऋषि विश्वजयी युवा ऋषि पायु का पिता है। ऐसे द्विबर्हा समर्थ ऋषि को भागवत में व्यभिचार से उत्पन्न एवं निन्दितजन्मा कहा गया है।[७] ऋषि जमदग्नि भार्गव ने ऋग्वेद के मण्डल ३,८,९,१० के ८ सूक्तों में ८८ ऋचाएँ रची हैं। इनमें ६४ ऋचाएँ सोम पर हैं। अतः यह सोमयागी ऋषि है। इसका पुत्र है वीर जामदग्न्य राम (परशुराम)। इसने भी ऋग्वेद १/११० का आप्रीसूक्त रचा है।[८] ऐसे महान् ऋषि को भागवत में – यज्ञ के कुफल

(१) सूत = क्षत्रियाद् विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। मनुस्मृति १०।११ मां ब्राह्मण एवं पिता क्षत्रिय से उत्पन्न सन्तान सूत। (२) ऋग्वेद – २।२७।१ (३) ऋग्वेद १।३२।१५ (४) ऋग्वेद १०।११४।६ (५) वेदविद्या, वासुदेवशरण अग्रवाल पृ. ६। (६) श्रीमद्भागवत १०।२५ (७) भागवत् ९।२०।३६-३७ (८) ऋग्वेद १।११० का ऋषि जमदग्नि भार्गव है अथवा जामदग्न्य राम है।

का कुत्सिततमफल एवं हत्यारा (घोरकर्मा) कहा गया है।[१] 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने सीतास्वयंवर के धनुषभंग प्रसंग में क्षत्रिय राजाओं की उपस्थिति में इसी ऋषि को लक्ष्मण द्वारा अपशब्द कहलवा कर अपमानित किया है और 'कवितावली' में तुलसीदास ने परशुराम को अनेक गर्भवतियों के पेट को फाड़कर स्त्रियों का एवं गर्भ का हत्यारा कहा है –

गर्भ के अर्भक काटन को पटुधार कुठार कराल है जाको ।

ऐसा हत्यारा जल्लाद, कसाई भी आज दिन तक पृथ्वी पर नहीं जन्मा है । अब प्रश्न यह कि एक सोमयागी कुल के परम पावन ऐतिहासिक वैदिक ऋषि को लेकर ऐसी घिनौनी कल्पना पौराणिकों ने क्यों की ? इसका उत्तर यह कि अपने कल्पित क्षत्रिय भगवान् राम के माहात्म्य को बढ़ाने के लिए पौराणिकों ने एक ब्राह्मण वैदिक ऋषि की बलि दी है और ऐसा तो अनेक वैदिक देवों और ऋषियों के साथ पौराणिकों ने सहेतु किया है जो घृणास्पद है । ऐसे प्रसंगों से वैदिक ऋषियों के प्रति पुराणों की प्रतिशोध भावना ही प्रगट हो रही है । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पुराण क्षत्रियपक्षी हैं । वैदिक देवों एवं ऋषियों के संबन्ध में पुराणों में जो अनुचित कहा गया है वह द्वेषप्रेरित आयोजन है । साररूप में हम यह कह सकते हैं कि वैदिकयुग ब्रह्म (मन्त्र) वर्चस्वी युग है तो वैदिकेतरयुग के बौद्ध, जैन एवं पुराण मत-पंथ क्षत्रियवर्चस्वी हैं । वैदिकेतर युग में राजा के रूप में प्रजा पर, इष्टदेव के रूप में मंदिरों में एवं परमात्मा के रूप में परलोक में क्षत्रियों के वर्चस्व का ही बाहुल्य है और इसके प्रतिष्ठापक हैं पुराण। पुराण के आख्यान ही समाज में सत्य बनकर छाए हुए हैं । फिर दुःख यह है कि जिनकी नसों में वैदिक ऋषियों का रक्त संचरित हो रहा है, जो वैदिक ऋषियों की सन्तान हैं । जिनके पूर्वज वेदों के रक्षक रहे हैं, ऐसे स्वयं को ब्राह्मण कहलवाने वाले भी वैदिक मार्ग को छोड़कर पौराणिक मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। ये क्षत्रिय अवतारों (जन्मों) का यशोगान एवं पूजा-प्रतिष्ठा, कथावार्ता करके न केवल उदरपोषण कर रहे हैं, अपितु ये स्वयं को धन्य भी मान रहे हैं । ब्राह्मण का ब्रह्म (वेद) को छोड़ना अब्रह्मण्यम् है ।[२] अर्थात् निन्दनीय है । ये सुब्रह्मण्यम् हों – धियो यो नः प्रचोदयात् । ऋग्वेद – ३।६२।१०।

उपनिषदों में एवं भगवद्गीता में भी वेदनिन्दा है ।

वेदनिन्दक उपनिषद्

परंपरागत मान्यता के अनुसार हमने उपनिषदों को वेदों के अन्तर्गत रखा है, पर जो वेदों का मन्त्रभाग है चारों वेद, उनकी एवं उपनिषदों की विचारधारा में कहीं-कहीं पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है । वेद विज्ञान से सम्बन्द्ध हैं तो उपनिषद् ज्ञान से । विज्ञान को अंग्रेजी में सायंस science कहते हैं तथा ज्ञान को नोलेज knowladge. रूपक में विज्ञान एवं ज्ञान के अन्तर को समझें तो विज्ञान जीवन से सम्बद्ध तरह-तरह के ज्ञानों का एक महासागर है पर ज्ञान एक गहरा कुंआ है। जिसमें ज्ञानी डुबकी लगाता है और भीतर ही भीतर धँसता चला जाता है। फिर ज्ञानजल का भार उसके सिर में इतना बढ़ जाता है कि फिर वह ऊपर संसार में नहीं आ पाता है और उसका भीतर ही भीतर वहीं मोक्ष हो जाता है । कई उपनिषद् ज्ञान की इतनी गहराइयों में उतर गए हैं कि उनका

(१) भागवत ९।१५।१०-१४ (२) सुब्रह्मण्यम् सामवेद के उद्गाता ऋत्विज् का तृतीय सहकारी ऋत्विज् है । प्रथम है प्रस्तोता । द्वितीय है प्रतिहर्ता ।

विवेक भी बहक गया है। कई उपनिषदों में वेद-विरुद्ध वचन मिलते हैं। छान्दोग्य, मुण्डक एवं कौषतकी ये प्रधान वैदिक उपनिषद् हैं और इनमें वेद-निन्दा है।[१] मुण्डक तो यज्ञों को जर्जरित-सड़ी-गली नाव कह रहा है, **'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा'**। (१।२।७) क्या यह यज्ञसंस्कृति एवं वेदों का तिरस्कार नहीं है ?

वेदनिन्दक भगवद्-गीता

सांख्य-योग, संन्यास-योग, आत्मसंयम-योग, ज्ञान-योग, ब्रह्म-योग, मोक्ष-संन्यास योग, भगवद्-गीता में मुख्यतः इन्हीं अध्यात्म विषयों का उपदेश है। इससे यह भी स्पष्ट है कि यह मुख्यतः योग का ग्रन्थ है। शङ्कराचार्य एवं कई टीकाकार भी भगवद्गीता को योग का ग्रन्थ मानते हैं। अब विचारणीय है कि कोई योगी भीतर तो नौ द्वारों का निरोध करके दसवें द्वार को भेदकर सहस्रार (मस्तिष्क) में निराकार ब्रह्म के साथ योग युक्त होता है, समाधिस्थ होता है, पर क्या वह बाहर भी रणांगन में वज्रबाहु हो कर शत्रु को दबा सकता है ? इस संबन्ध में हमें शंका है। योगी एवं योद्धा दोनों की राशि तो एक है पर क्षेत्र अलग-अलग हैं। एक का अपने भीतर इन्द्रियों के बीच तो दूसरे का रणांगन में शत्रुओं के बीच। हमारा यह स्पष्ट मत है कि भगवद्गीता भीतरी युद्ध अर्थात् योग का ग्रन्थ है।[२] हाँ, चण्डीपाठ (दुर्गासप्तशती) अवश्य बाहरी युद्ध रणांगन का धार्मिक ग्रन्थ है। खैर, हमें तो यहाँ केवल यही कहना है कि उपनिषद्-सारभूता भगवद्गीता में स्थान-स्थान पर वेदनिन्दा है।[३] जो शोभनीय नहीं है।

सनातनचक्षु वेद

स्मृतिकार मनु वेदों को सनातन चक्षु कह रहा है - 'वेदश्चक्षुः सनातनम्' क्योंकि वेद सूर्य की भाँति मानव मात्र के सनातन चक्षु हैं। इन्हीं सनातन चक्षु वेदों की आँखों में धूल झोंकने वाले कुद्रष्टाओं को मनु अंधेरे में भटकने वाले, निष्फल और वेदबाह्य कह रहा है -

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ताः निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

वैदिक उपासना का सरल रूप

ऋषि सौभरि काण्व वैदिक उपासना का सरल रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है। यह कहता है कि मन्त्रों द्वारा देवों का आवाहन करके उनके लिए अग्नि में आहुतियाँ प्रदान करो और यह न कर सको तो देवता का स्मरण करके उसको नमस्कार कर लो। नमस्कार भी अपने आप में सुयज्ञ है —

---

(१) वेदनिन्दात्मक उल्लेखों को प्रस्तुत करते हुए डॉ. लक्ष्मणसरूप लिखते हैं - 'वेदविरोधी कथनों को वेदानुकूल सिद्धान्तों के साथ समाधान करने के लिए भाष्यकारों ने पटुतापूर्ण व्याख्याएँ की हैं। कैसा कपट है भाष्यकारों का ? निरुक्त पृ. ७५-से ७९ पठनीय। (२) आचार्य शङ्कर भी भगवद्गीता को योगशास्त्र का ग्रन्थ ही मानते हैं। हिन्दुओं की प्रबुद्ध रचनाएँ, पृ. १४४ थ्योडोर गोल्ड स्टूकर। भगवद्गीता में उपदेष्टा (कृष्ण) एवं शिष्य-श्रोता (अर्जुन) का जो रूपक है। वह तो प्रभावान्विति एवं पाठकों को आकर्षित करने के हेतु से ही। डॉ. भ्रमरलाल जोशी। (३) भगवद्गीता - अध्याय -२ विशेषतः वेदनिन्दा के लिए पठनीय।

य: समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
यो नमसा स्वध्वरः ॥ ऋग्वेद ८/१९/५ ।

यों वैदिक होने के लिए सूर्यादि देवों का स्मरण करके उनको केवल नमस्कार करना ही पर्याप्त है। फिर नमस्कार करनेवाले और नमस्कार न करनेवाले सभी तो सूर्य के ही पैरों में हैं । सूर्य की ही सन्तान हैं । अतः सभी मनुष्य अपने आप ही वैदिक हैं । ऋषि हिरण्यस्तूप आङ्गिरस कहता है – 'तीनों भुवन और सारी सृष्टि पुत्र की भाँति अपने पिता सूर्य की गोद में बैठे हैं –'

शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ऋग्वेद १।३५।५।

जीवन के प्रति भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण में वैषम्य

अनादिकाल से सूर्य अवश्य पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा है पर शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान का सूर्य तो सैकड़ों वर्षों से ई. सन्. से भी पूर्व ५०० वर्षों से पश्चिम में उदित हो कर सारे संसार को आलोकित कर रहा है । आज पश्चिम का विज्ञान जब ब्रह्माण्ड को मापने, ब्रह्माण्ड की थाह लेने जीवित मनुष्य को ग्रह-उपग्रहों के आलोक में भेज रहा है तब पूर्व का भारतीय भक्ति-वेदान्त का अव्यावहारिक एवं मनगढन्त तत्त्वज्ञान जीवित ही मनुष्य को निर्जीव करके, मार करके ऊपर के लोकों (गोलोक-विष्णुलोक) में भेज रहा है । भारतीय वैदिक विज्ञान के सूर्य को वैदिकेतर मत-पंथ-साधनाएँ न ग्रसतीं तो विज्ञान का जैसा सूर्य पश्चिम में आलोकित हो रहा है वैसा ही या उससे भी बढ़कर अधिक तेजस्वी वैदिक विज्ञान का सूर्य अवश्य भारत में भी आलोकित होता ।

वेदों के तिरस्कार का दुष्परिणाम

शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान का तिरस्कार करनेवाली प्रजा अपने आप ही निर्वीर्य हो जाती है । वेदों का तिरस्कार करके, ऋषियों की वीर्यवती, प्रज्ञावती एवं ऐश्वर्यवती परंपरा का अनुसरण न करके हमने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है । हमने एक हजार वर्ष का दासत्व भोगा है और आज भी हम मानसिक दासत्व से मुक्त नहीं हैं । करोड़ों भारतीयों का धर्मान्तर हुआ है । असंख्य माताओं और बहू-बेटियों पर सरे आम बलात्कार हुए हैं और हम इतने शीतल हो चुके हैं, इतने शीतल केंचुए बना दिए गए हैं कि हमारा रोयां भी नहीं हिल रहा है । स्थितप्रज्ञता की कैसी पराकाष्ठा है हम भारतीय भक्ति-वेदान्तियों की, जगत् को मिथ्या एवं क्षणभंगुर कहने वाले तत्त्वज्ञों की और अहिंसा-करुणा के त्यागी तपस्वियों की !

कवि दुष्यन्तकुमार के शब्दों में भारत का यथार्थ चित्र देखिए। सब तरह से टूटा हुआ, परमुखापेक्षी, विवश, भग्न, हताश, बेघर, भटकता, फटेहाल, जर्जरित, भूखा, क्षयग्रस्त, लड़खड़ाता एक निर्जीव-सा पुरुष –

कल नुमाइश में मिला, वो भी चींथड़े पहने हुए।
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान हूँ ॥[१]

यों आज जो हम दुर्दशाग्रस्त हैं, जर्जरित हैं, वह निश्चित ही तिरस्कृत वेदों, तिरस्कृत वैदिक देवों एवं तिरस्कृत ऋषि-ऋषिकाओं के अभिशाप का ही दुष्परिणाम है। क्योंकि **'देवनिदो प्रथमा अजूर्यन्'** (ऋग्वेद - १।१५२।२। ऋषि दीर्घतमा औचथ्य) वेदनिन्दक जल्दी वृद्ध होते हैं और नष्ट होते हैं और हो ही रहे हैं और होकर ही रहेंगे, यदि ऋषियों की बात नहीं मानेंगे तो।

कामना

हमने यहाँ चारों वेद, वैदिक साहित्य, वेदों की नाभि ऋग्वेद एवं वैदिकेतर मत-पंथ-संप्रदायों की संक्षेप में झाँकी कराई है। वह इस हेतु से कि सुज्ञ पाठकों को वेदों के वास्तविक स्वरूप का ख्याल आए और उनमें वेदों के प्रति जिज्ञासा जाग्रत हो। जैसे शिशु मां के स्तनों से जुड़ता है वैसे ही वे वेदों से और वेदों के ऋषि-ऋषिकाओं से पुनः जुड़ जाएँ।

वैदिक मार्ग से विमुख हुआ ऋषि हिरण्यस्तूप आङ्गिरस नमस्कारपूर्वक प्रायश्चित्त कर रहा है - 'हे पिता अग्नि, कुछ काल तक हम तुझ से विमुख रहे। अतः हम अज्ञजनों को तू क्षमा कर' -

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ ऋग्वेद १/३१/१६

हम भी ऋषि हिरण्यस्तूप आङ्गिरस की भाँति नमस्कारपूर्वक प्रायश्चित्त करें और विशुद्ध मन हो कर अपनी वृद्धि के लिए वेदों से पुनः जुड़ जाएँ यही एकमेव कामना है।

'श्रूयताम्। श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।'

सुनें। सुन कर वीर्यवान् एवं विज्ञानवान् वैदिकमार्ग पर चलने का सङ्कल्प करें।

॥ शुभमस्तु ॥

---

(१) सायें में धूप, दुष्यन्तकुमार

(२) ऋग्वेद १/१५२/२/ऋषि

परिशिष्ट १ सन्दर्भग्रन्थसूची

वैदिकग्रन्थ एवं संस्कृतग्रन्थ

ग्रन्थनाम	विवरण
(१) ऋग्वेद (पदपाठ) (शाकलशाखा)	हस्तलिखित पाण्डुलिपि, शाके १७३, लिपिक अन्नम् भट्ट। सम्पूर्ण ग्रन्थ मेरे (भ्रमरलाल जोशी के) पास सुरक्षित है।
(२) ऋग्वेद (मूल संहितापाठ) (शाकलशाखा)	संपादक, स्वामी गङ्गेश्वरानन्द, वि.सं. २०४८
(३) ऋग्वेद (संस्कृतभाष्य, स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव, तथा सायणभाष्यानुसारिणी मुद्गलीयावृत्ति)	संपादक, विश्वबन्धु विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध-संस्थानम्, होशियारपुर (पंजाब) प्रथमसंस्करण सन् १९६५
(४) ऋग्वेद (संस्कृत-भाष्य, सायण)	प्रकाशक, वैदिकसंशोधनमण्डल, सन् १९३३ (पूना)
(५) ऋग्वेदव्याख्या माधवकृता	प्रकाशक, अडियार (मद्रास) लाईब्रेरी, सन् १९३९.
(६) ऋग्वेदसंहिता, सिद्धाञ्जनाख्य-भाष्यसमेता. (श्रीकपालिशास्त्रिविरचित)	प्रकाशक, एम्.पी.पंडित, पाण्डिचेरी, सन्. १९५१
(७) ऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्य एवं हिन्दी-अनुवादक पं. रामगोविन्द त्रिवेदी)	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी. सन् १९९१.
(८) ऋग्वेदसंहिता, "वैदिकजीवनभाष्ययुता (पदपाठ, शद्धार्थ, संस्कृत एवं भाषा-अनुवाद)	संपादक, शिवनाथ आहिताग्नि, पं. शंकरदत्त शास्त्री, नागप्रकाशक, दिल्ली (ई.सन् १९९१ द्वितीय संस्करण)
(९) ऋग्वेद (सूक्त-समीक्षा के साथ, हिन्दी अनुवाद)	अप्रकाशित, हस्तलिखित, दसों मण्डलों का ३९३९ पृष्ठों में सूक्त समीक्षा के साथ अनुवाद साहित्यमहोपाध्याय डॉ. भ्रमरलाल जोशी
(१०) निघण्टु (श्री देवराजयज्वकृत-टीका, प्रथम भाग)	संपादक, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२
(११) निरुक्तम् (द्वितीय भाग-नैघुण्टक-काण्डम्, तृतीयो भागः नैगम काण्डम्, चतुर्थो भागः दैवतकाण्डम् दुर्गाचार्य टीका)	संपादक मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२

(१२) शाकलर्कसंहिता (मूल)	प्रकाशक, राजाराम तुकाराम तात्याभिख्येन तत्त्वविवेकमुद्रणालये मुद्रितम्, सन् १९००
(१३) निरुक्तम् (कश्यपप्रजापतिकृत निघण्टुभाष्यरूपम्, दुर्गाचार्यकृत ऋज्वर्थाख्य-व्याख्यानुसारिण्या)	संपादक, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, सन् १९८९
(१४) निरुक्त भाषाटीका (श्री स्कन्दस्वामि-महेश्वर विरचिता) दो भागों में ।	प्रकाशक, पाणिनि, नई दिल्ली, सन्. १९८२.
(१५) निरुक्तशास्त्रम् व्याख्याकार भगवद्दत्त	प्रकाशक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, संवत् - २०२१
(१६) निघण्टु तथा निरुक्त (मूल तथा हिन्दी अनुवाद, डॉ. लक्ष्मणसरूप)	प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, सन् १९२६
(१७) निरुक्तम् (म.म. श्री छज्जूराम शास्त्री)	प्रकाशक, मेहरचंद लछमनदास, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण सन् १९८५
(१८) निरुक्तम् (डॉ. उमाशङ्कर ऋषि)	प्रकाशक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सप्तम संस्करण सन् १९९५
(१९) निरुक्तम् (दुर्गाचार्य व्याख्या)	प्रकाशक, विनायक गणेश आप्टे. (पुण्याख्यपत्तने, पूना) सन् १९२१
(२०) वैदिककोश : (पं. भगवद्दत्त एवं हंसराज)	संपादक, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, वाराणसी सन्. १९९२.
(२१) वैदिककोषः	प्रकाशक - आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, सन् १९७५
(२२) वैदिककोश (पं.चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं श्री अनिलकुमार उपाध्याय) ३ भाग.	प्रकाशक, नागप्रकाशन सन् १९९५
(२३) शौनकीय बृहद्देवता	प्रकाशक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वि. सं. २०४६
(२४) वाचस्पत्यम् (६ भाग) संपादक, तारानाथतर्कवाचस्पति)	चौखम्बा संस्कृत-सिरीज, वाराणसी, सन् १९९०

(२५) शद्बार्थचिन्तामणि (४ भाग) — प्रथम एवं द्वितीय भाग, प्रकाशक, ब्रह्मावधूत सुखानन्द संवत् १९२१, आगरा
तृतीय एवं चतुर्थ भाग, प्रकाशक - महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर, मेवाड़) संवत् - १९४२.

(२६) शद्बकल्पद्रुम (५ भाग) (संपादक- स्याराजा राधाकान्त देव) — प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९६१

(२७) हलायुधकोश (संपादक, जयशङ्कर जोशी) — सरस्वतीभवन, वाराणसी कृते प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश द्वारा प्रकाशित वि. सं. २०१४.

(२८) संस्कृत हिन्दी कोश (वामन आप्टे शिवराम) — प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९६९

(२९) संस्कृतवाङ्मयकोश (४ भाग) डॉ. श्रीधर वर्णेकर — प्रकाशक, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता

(३०) धर्मकोश (४ उपनिषद् भाग) लक्ष्मण शास्त्री जोशी — संपादक लक्ष्मण जोशी, प्रज्ञा पाठशाला- मण्डल ग्रन्थमाला, सन् १९५०

(३१) वैदिककोश साहित्यमहोपाध्याय डॉ. भ्रमरलाल जोशी — अप्रकाशित । निघण्टु देवराजयज्वकृतदीका एवं निरुक्त के आधार पर।

(३२) श्रीमद्भागवत. — संपादक - गीता प्रेस, गोरखपुर

(३३) भगवद्गीता शाङ्करभाष्य — संपादक - गीता प्रेस, गोरखपुर

(३४) उत्तररामचरितम् भवभूति — –

जर्मन एवं अंग्रेजी

(१) Sanskrit Worter Buch (संस्कृत वर्ड बुक) जर्मन में वैदिक एवं संस्कृत कोश OTTO BohtlinGk und Rudolph Roth — प्रथम संस्करण, टोकियो, जापान, द्वितीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सन् १९९०

(२) Rig-Veda - Sanhita. (A Collection of Ancent Hindu Hyms.) — H. H. Wilsom (Poona) 1928.

(३) The Hymns of the RIG-Veda. — R.T.H. Griffth, 1889 KotaGIRi, NILGIRI

(४) Vedic Glossary (Shree Aurobindo's) — प्रकाशक अरविंद आश्रम, पाण्डिचेरी, सन्. १९६२

(५) Sanskit English Dictionary. compited by Arthur A. MAC-Donell, M. A. Ph.D. — Long mans Green and Co. New York सन् 1893

हिन्दी

(६) प्रो. घाटे द्वारा ऋग्वेद पर व्याख्यान, (संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली) — प्रकाशक, - संस्कृतविभाग, दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली.

(२) कामायनी (हिन्दी महाकाव्य) जयशङ्कर प्रसाद — प्रकाशक-भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

(३) वैदिक माइथोलोजी, ए. ए. मैकडोनल — प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, सन् १९९४

(४) वैदिक इण्डेक्स (मैकडोनल एवं कीथ) — प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-वि. सं. २०१८

(५) वेदविद्या वासुदेवशरण अग्रवाल — प्रकाशक, रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा.

(६) वेद का स्वरूप विचार पं.मोतीलाल शास्त्री वेदवीथीपथिक: — प्रकाशक, राजस्थान पत्रिका प्रा. लिमि., जयपुर

(७) वैदिक साहित्य का इतिहास डॉ. कर्णसिंह — प्रकाशक, साहित्य भण्डार, मेरठ

(८) वैदिक साहित्य और संस्कृति डॉ. बलदेव उपाध्याय — शारदा संस्थान, वाराणसी ।

(९) राजस्थानी भाषा और साहित्य पं. मोतीलाल मेनारिया — प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग । संवत् २००६

(१०) हिन्दुओं की प्रबुद्ध रचनाएँ पं. थ्योडोर गोल्ड स्टूकर अनुवादिका-रमा शास्त्री — प्रकाशक, चौखम्बा विद्याभवन, सन् - १९६०

(११) हिन्दी कृष्णकाव्य में भक्ति एवं वेदान्त, डॉ. सन्तोष पाराशर — प्रकाशक, गुर्जरभारती अहमदाबाद, सन् १९८६

(१२) हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग ५) डॉ. दीनदयालु गुप्त. — प्रकाशक - काशीनागरी प्रचारिणी सभा. वि. सं. २०३१

(१३) हिन्दुत्व, रामदास गौड़, — प्रकाशक, शिवप्रसाद गुप्त, वि. सं. १९९५

(१४) सायें में धूप (गज़ल संग्रह) दुष्यन्तकुमार — राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली ११०००२

(१५) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

गुजराती

(१) सोक्रेटीस (ऐतिहासिक उपन्यास) श्री मनुभाई पंचोली, दर्शक — सणोसरा, राजकोट, गुजरात.

वेदसबन्धी पत्राचार

(१) डॉ. चि. ग. काशीकर (पूणे)

परिशिष्ट-२

नामानुक्रमणिका

परिशिष्ट ३ वेदः धननाम, धन अर्थात् ABUNDANCE सांसारिक सुख-वैभव की प्रचुरता

	वेदस् (वेदः)	१	२	३	४	५	६
अ. नं.	ऋग्वेद में वेदः पद का प्रयोग १४ बार ।	ऋग्वेद भाष्यकार स्कन्दस्वामी	ऋग्वेद भाष्यकार वेंकटमाधव	ऋग्वेद भाष्यकार सायण	सायण के ऋग्वेद के भाष्य पर वृत्तिकार मुद्गल	ऋग्वेद भाष्यकार माधव (अडियार)	ऋग्वेद भाष्यकार कपालिशास्त्री
१	वेदो भरन्त १।७०।५ ऋषि शाक्त्य पाराशर	धनं हरन्ति	धनं हरन्ति	धनं हरन्ति विद्लृ लाभे कर्मणि असुन् ।	धनं प्रयच्छति	धनानि प्रयच्छ	धनं आहरन्ति
२	नो वेदु आ भर १।८१।९ ऋषि राहूगण गोतम	अस्माकं अर्थाय धनं आहर	तेषां धनं आभर	धनं नः आभर	धनं नः आभर	धनं अस्मभ्यं आहर	धनं आहर
३	नि दहाति वेदः १।९९।१। ऋषि मारीच कश्यप	नियमेन दहति अग्नि धनम्	भस्मीकरोति धनम् ।	धनं नितरां भस्मीकरोति, विद्यते लभ्यते, इति वेदः विद्लृ लाभे औणादिकः कर्मणि असुन् ।	धनं नितरां दहतु	भस्मीकरोति धनम् ।	धनं नितरां दहतु
४	विभजन्नेति वेदः १।१०३।६। ऋषि कुत्स आङ्गिरस	किं विभजन् धनम्	धनं विलोपयन् गच्छति	धनं बलात्कारेणापहृत्य गच्छति	धनं अपहरन् एति	धनं उपभरन् एति	धनं अपहरन् गच्छति
५	आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः ३।५३।१४।। ऋषि विश्वामित्र गाथिन	स्कन्द-भाष्य १।१।१। से १।१२१ तक तथा ६।२९ से ६।७५ तक ही ।	धनं अस्माकं वशं नयेति ।	आहर नः प्रमगन्दस्य धनानि ।	मुद्गल की वृत्ति १।१।१। से १।१२१ तक ५।९ से ५।८७ तक ६।१ से ६।९। तक	माधव-भाष्य १।१।१। से १।१२१। तक	कपालिशास्त्री भाष्य-१।१।१ से १।१२१ तक

			२	३	७
			ऋग्वेद भाष्यकार वेंकटमाधव	ऋग्वेद भाष्यकार सायण	७, भाष्यकार उद्गीथ
६	अस्य वेदः खिदति । ४।२५।७। ऋषि वामदेव गौतम		अस्य धनं आ अखिदत्।	अस्य वेदः धनम् खिदति उद्धरति ।	इदृशस्य पुरुषस्य स्व भूतं धनं युद्धवर्जिनः। (उद्गीथ का भाष्य १०।५३ से १०।८३।६। तक)
७	समंजाति वेदः (५।२।१२।) ऋषि आत्रेय कुमार, जान, वृष उभौ वा ।		धनं संगमयति	धनं संयोजयति	
८	स नो वेदः (७।१५।३) ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ ।		सः अस्माकं धनं रक्षतु ।	अग्निः अस्माकं धनं रक्षतु	
९	सुष्वितराय वेदः (७।१९।१) ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ		यजमानाय धनं प्रयच्छति।	सोमाभिषवं कुर्वते जनाय धनं प्रदाता	
१०	तस्य नो वेद आ भर ८।४५।१५। ऋषि त्रिशोक काण्व ।		तस्य नः धनं आहर ।	धनं अस्मभ्यं आहर	
११	अदाशूष्टरस्य वेदः (८।८१।७) ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ		जनानां मध्ये अत्यन्तं अदातुः धनम् ।	जनानां मध्ये अत्यन्तमदातृतमस्य धनम् ।	
१२	अस्य वि भजानि वेदः (१०।२७।१०) ऋषि वसुक्र ऐन्द्र		युद्धमकुर्वन्नेव अहं धनं आदाय अभियोक्त्रे प्रयच्छामि ।	अहं धनं बलादपहृत्य यष्टृभ्यः ददामि ।	
१३	हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो (१०।८४।२) ऋषि मन्यु तापस		हत्वा शत्रून् विभजस्व तद्धनम् अस्मभ्यम् ।	प्रयच्छास्माकं धनं शत्रुसम्बन्धि	
१४	अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदः (१०।९९।३) ऋषि वम्र वैखानस		अप्रत्यृतः इन्द्रः शतद्वारस्य शत्रुपुरस्यान्तर्निहितं तद्धनम्।	शतद्वारस्य शत्रुपुरस्य अन्तर्निहितं यद्धनम् तद्धनं आवरकेण कालेन अभिभवति।	

जातवेदः

जातऽवेदः १.४४.१; ५९.५; ७९.४; २.२.१२; ३.६.६; १७.२–४; २०.३; २१.१; २२.१; २५.५; २८.१; ४; ६; ५७.६; ४.३.८; ५.११; १२; १२.१; ५.४.४; ५.४.४; ९; ११; ४३.१०; ६.५.३; ७.३.८; ५.७; ५.७; ८; ९.६; १३.२; १७.३; १०४.१४; ८.११.३; ४; ७१.७; १०.४.७; ८.५; १५.१२; १३; १६.१; २; ४; ५; ५१.३; ७; ६९.८; ९; ८७.२; ५–७; ११; ८८.५; ११०.१; १४०.३

जातऽवेंदसः ३.११.८; ६.८.१; ८.११.५; ४३.६; १०.१८८.२; ३

जातऽवेंदसम् १.४४.४; ५०.१; १२७.१[२]; २.२.१; ३.२.८; ३.८; ११.४; ५.९.१; २२.२; २६.७; ६.१५.७; ४८.१; ८.२३.१; १७; २२; ४३.२३; ७१.११; ७४.३; ५; १०.६.५; १६.१०; १५०.३; १७६.२; १८८.१

जातऽवेंदसा ७.२.७

जातऽवेंदसि ६.१६.४२

जातऽवेंदसे १.९४.१; ९९.१; ३.१०.३; ४.४.१; ५.५.१; ७.१४.१; १०.९१.१२; ११५.६

जातऽवेंदाः १.७७.५; २.४.१; ३.१.२०; २१; ५.४; २३.१; २६.७; २९.२; ४.१.२०; १४.१; ५८.८; ६.४.२; १०.१; १२.४; १५.१३; ७.९.४; १२.२; १७.४; १०.१६.९; ४५.१; ६१.१४; ८३.२; ८८.४

परिशिष्ट ४

ऋग्वेद के संस्कृत के सात भाष्यकार,

(जो मेरी हिन्दी व्याख्या-समीक्षा के आधार हैं ।)

१. आचार्य स्कन्दस्वामी - स्कन्दमहेश्वर इनका दूसरा नाम । ये ऋग्वेद के प्रथम भाष्यकार। पिता भर्वध्रुव । स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्गीथ तीनों आचार्यों ने मिलकर सम्पूर्ण ऋग्वेद पर भाष्य लिखा । स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद के पूर्वभाग पर, नारायण ने मध्यभाग पर एवं उद्गीथ ने अन्तिम भाग पर। मेरे सामने विश्वबन्धु (होशियापुर) सम्पादित ऋग्वेद-भाष्य है। इसमें स्कन्दस्वामी के भाष्य का १।१।१ से १।१२१ । (प्रथम अष्टक) तथा ६।२९ । से ६।७५ । तक अंश ही सम्पादित है । ये ऋग्वेद के सर्व प्रथम भाष्यकार हैं । इनका भाष्य याज्ञिक मतानुसारी है । यह झील के पानी की तरह पारदर्शी है । इन्होंने एक सहृदय कवि की भाँति कोमल शैली में कवि-ऋषियों की छन्द-वाणी की विस्तृत व्याख्या की है। वैदिक साहित्य में इनके भाष्य का अप्रतिम स्थान है । डॉ. श्रीधर वर्णेकर अपने ग्रन्थकारकोश में लिखते हैं - "सायण का ऋग्वेद-भाष्य बहुत स्थलों पर स्कन्दस्वामी के भाष्य की छाया मात्र है ।" मैं भी इस मत से पूर्णतया सहमत हूँ ।

आचार्य स्कदस्वामी ने निरुक्त पर भी टीका लिखी है । आचार्य स्कन्दस्वामी गुर्जरधरा के गौरव थे । ये ७वीं शती में तत्कालीन सौराष्ट्र की राजधानी वल्लभी के निवासी थे । ये महाराज हर्ष एवं कादम्बरीकार बाणभट्ट के समकालीन थे ।

स्कन्दस्वामी अपने भाष्य में इन सूक्तियों को बार-बार दुहराते हैं - **'स्तूयमाना हि देवता वीर्येण वर्धन्ते ।' स्तुतिर्हि देवानां वृद्धिकरी ।' स्तोत्रेण हि देवता हृष्टा सती वर्धते ।' 'स्तुत्या हि देवता विक्रीयन्ते । 'देवानां च मनुष्याणां च स्तुत्य-स्तोतृ सम्बन्धः सख्यम्** । वास्तव में इन पंक्तियों से ऋषियों का जीवन, उनकी देवस्तुतियाँ एवं उनके यज्ञ-कर्मों का प्रयोजन स्पष्ट हो रहा है । साथ ही यह भी स्पष्ट हो रहा है कि ऋषि-ऋषिकाएँ देवों के सखा थे और उनके जैसा ऐश्वर्यवान् होने के लिए ही उनकी स्तुति करते थे और हवि-अन्न-सोम से उन्हें संतृप्त करते थे।

२. आचार्य उद्गीथ - आचार्य उद्गीथ ने आचार्य स्कन्दस्वामी और आचार्य नारायण के साथ मिलकर ऋग्वेद पर भाष्य लिखा था । यों ये स्कन्दस्वामी के समकालीन थे । इनका भाष्य याज्ञिक पद्धति पर विस्तारपूर्वक है । मेरे सामने विश्वबन्धु (होशियारपुर) सम्पादित ऋग्वेद-भाष्य है । इसमें उद्गीथ के भाष्य का १०।५३। से १०।८३ अंश ही सम्पादित है । ये स्कन्दस्वामी की टक्कर के कुशल, विशुद्ध एवं मौलिक भाष्यकार हैं । ये कर्नाटकप्रदेश की वनवासी नामक नगरी के निवासी थे ।

३. **आचार्य वेंकटमाधव** - आचार्य वेंकटमाधव ११वीं शती में हुए थे। ये सायण और 'निघण्टु,' के भाष्यकार देवराज यज्वा से पहले हुए थे । इनके पितामह माधव एवं पिता वेंकटार्य थे। स्पष्ट है कि इन्होंने अपने नाम में पिता एवं पितामह दोनों के नाम का संयोग कर दिया है – वेंकटमाधव । इनकी मातामह का नाम भवगोल एवं माता का नाम सुंदरी था । इनका गोत्र कौशिक था । इन्होंने ऋग्वेद पर दो भाष्य लिखे थे – विस्तृत एवं संक्षिप्त । आज हमें इनका सम्पूर्ण ऋग्वेद पर संक्षिप्त भाष्य 'ऋगर्थदीपिका' ही मिलता है, जो विश्वबन्धु (होशियारपुर) द्वारा सम्पादित है ।

वेंकटमाधव ऋग्वेद के प्रगल्भ भाष्यकार थे । आचार्य सायण का भाष्य विस्तृत होते हुए भी इनके भाष्य की तुलना में वह अस्पष्ट एवं अटपटा है । इनका भाष्य याज्ञिक पद्धति का है। **वर्जयन् शब्दविस्तरम्** 'इनकी प्रतिज्ञा थी । प्रत्येक ऋचा की अन्वय पद्धति से ये व्याख्या करते चलते हैं । अर्थ समझ में न आए उस कठिन पद के स्थान में ये सरल पद रख देते हैं । यदि कठिन पद दुबारा आ जाए तो उसको यथावत् रख देते हैं क्योंकि उसकी स्पष्टता इन्होंने पहले कर दी है । यदि आदि से अन्त तक इनके ऋग्वेद के भाष्य को तन्मय होकर पढ़ा जाए तो मेरा विश्वास है कि कोई भी ऋचा ऐसी नहीं होगी कि जिसका अर्थ अधिकारी विद्वान् को समझ में न आए । मैंने इनके ही भाष्य को अपनी हिन्दी व्याख्या में केन्द्र में रखा है । ये मत्स्यवेध में केवल मत्स्य की आँख एवं चिड़िया की आँख मात्र देखने वाले कुशल भाष्यकार हैं । ऋग्वेद में दुबारा आई ऋचा के लिए ये लिख देते हैं – गता, व्याख्याता और क्रम संख्या दे देते हैं ।

४. **आचार्य सायण** - आचार्य सायण का जन्म १४वीं शताब्दी में आन्ध्र में हुआ । इनके पिता थे मायण एवं माता श्रीमती । इनके बड़े भाई थे माधवाचार्य एवं छोटे भाई थे भोगनाथ। ये चाणक्य की भाँति कूटनीतिज्ञ थे । ये संग्रामशूर एवं प्रकाण्ड पण्डित थे । ये चारों वेदों के भाष्यकार थे । ये महाराज कंपण के महामंत्री थे । कंपण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र संगम (द्वितीय) के ये मार्गदर्शक एवं अभिभावक बने । राजा चंप ने जब संगम के प्रदेश पर आक्रमण किया तब सायण ने सेनापति बनकर युद्ध किया था और चंप को करारी हार दी थी । ये सम्राट् बुक्क के शासनकाल में भी प्रधान पद पर रहे थे ।

ये कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के थे । अतः अग्रपूजा के रूप में इन्होंने सर्वप्रथम कृष्णयजुर्वेद पर ही भाष्य लिखा । इसके पश्चात् ऋग्वेद पर इनका सम्पूर्ण एवं विस्तृत भाष्य है । जिसका संशोधन के साथ सर्वप्रथम सम्पादन एवं मुद्रण संवत् १९३१ में जर्मन निवासी महावैदिक पण्डित मेक्समूलर ने किया और महारानी विक्टोरिया को समर्पित किया है । यह हिमालय के जितना महान् एवं जाह्नवी के जितना पावन उपकार है भारतीय संस्कृति एवं हिन्दूप्रजा पर पण्डित मेक्समूलर का । समर्पण के शब्द हैं –

TO

HER MOST EXCELLENT MAJESTY

Victoria

Queen of Great Britain and Ireland

Empress of India

THIS EARLIEST RECORD

OF THE RELIGIOUS INSTITUTIONS OF THE NATIVES OF INDIA

IS BY GRACIOUS PERMISSION

Dedicated

BY

HER MAJESTY'S

FAITHFUL SUBJECTS AND DEVOTED SERVANTS

Pasupati Ananda Gajapati Raz and Frederick Max Müller

[समर्पित, महामहिम साम्राज्ञी विक्टोरिया, ग्रेटब्रिटेन एवं आयलैंड की महारानी तथा हिन्दुस्तान की मलिका को; हिन्दुस्तान के मूलनिवासियों की धार्मिकसंस्थाओं का यह सर्वप्रथम प्रलेख (रेकॉर्ड); कृपापूर्ण अनुमतिपूर्वक; साम्राज्ञी के विश्वसनीय प्रजाजन, अनन्य भक्त, सेवक, पशुपति आनन्द गजपतिराज एवं फ्रेडरिक मेक्समूलर से।]

आचार्य सायण के ऋग्वेद के भाष्य पर संपादक के रूप में पण्डित मेक्समूलर की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी- **उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा**, जैसे उषा भुवनत्रय को प्रकाशित करती है वैसे ही भारतीय संस्कृति के मुख को सर्वदा उज्ज्वल करनेवाली हैं –

"सायणाचार्यविरचितमाधवीयवेदार्थप्रकाशकाय भाष्यसहिता शार्मण्यदेशोत्पन्नेंगलेदशवासिना भट्ट – मोक्षमूलरेण संशोधिता श्रीमद् भारतवर्षमहाराज्यामात्यानामनुमत्या च उक्षतरणभिधाननगरे विद्यामंदिर – संस्थानमुद्रणालये च मुद्रिता। संवत् १९३१ वर्षे। **शार्मण्यदेश** – जर्मन। **उक्षतरणनगर** – ओक्सफोर्ड। **विद्यामंदिरसंस्थान** – युनिवर्सिटी ।)

क्या भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू प्रजा पं. मेक्समूलर के इस सारस्वत वैदिक ऋण से कभी मुक्त हो सकेगी?

ऋग्वेद में ऐसी कई ऋचाएँ हैं जो विभिन्न सूक्तों में बार-बार आ रही हैं। सायण के भाष्य में दुहराई गई ऐसी ऋचाओं के अर्थ में अन्तर है। इससे स्पष्ट है कि सायण ने ऋग्वेद के कई भाग करके भाष्य के लिए उनको विभिन्न विद्वानों को सौंप दिया होगा। सायण के पास धन, बल, बुद्धि पर्याप्त थे। वे आजीवन राजकर्म एवं युद्धकर्म में व्यस्त रहे थे। अतः यह निर्मूल नहीं कि सायण ने यजमान बनकर शुल्क देकर पण्डितों से वेदों के भाष्य करवाए हों। बड़े-बड़े राजा, धनाढ्य, मठपति साधु-संन्यासी, आचार्य जगद्गुरु ऐसा ही करते आए हैं।

पण्डित विवश होकर मजदूरी करते हैं एवं नाम शुल्कदाता यजमान का होता है । मैं स्वयं भुक्तभोगी हूँ । मैंने जैन-ग्रन्थों पर १० वर्ष काम किया था पर कहीं भी ग्रन्थ पर मेरा नाम नहीं है । नाम आचार्यसाधुओं का ही है ।

५. **आचार्य मुद्गल** - आचार्य मुद्गल १४वीं शताब्दी में हुए । इनका भाष्य सायणकृत भाष्य का संक्षिप्त एवं सरल रूप है । मुझे लगता है कि **'बालानां सुखबोधाय'** अर्थात् संस्कृत के साधारण ज्ञाता के लिए इन्होंने भाष्य लिखा है । जिसे वृत्ति नाम दिया गया है । ऋग्वेद पर इनका भाष्य १।१।१। से १।१२१ तक, ५।९। से ५।८७ तक एवं ६।१। से ६।९ तक है । ये सुबोध भाष्यकार हैं ।

६. **आचार्य माधव** - ऋग्वेद के भाष्यकार आचार्य माधव दक्षिण भारत में गाँव गोमत के निवासी थे । भाष्य में इन्होंने एक स्थान पर अपना नाम मात्र दिया है - माधवेन (१।८०।१५) अडियार पुस्तकालय, इस्टर्न सेक्षन, जनरल नं. ६२८६ क्रम में इनके ऋग्वेद-भाष्य की मुद्रित प्रति सुरक्षित है । मेरे पास इनके भाष्य की फोटोस्टेट कोपी है । प्रो. सी. कुन्हन राज द्वारा ताड़पत्र पर से यह भाष्य संशोधित एवं सम्पादित है । आचार्य माधव ने आचार्य वेंकटमाधव के ऋग्वेद के भाष्य का आधार लिया है । इनके भाष्य के साथ-साथ आचार्य वेंकटमाधव का भी भाष्य मुद्रित है । भाष्य सरल एवं सुबोध संस्कृत में है । ऋग्वेद १।१।१। से १।१२१। (प्रथम अष्टक) तक ही इनका भाष्य है ।

७. **आचार्य कपाली शास्त्री** - ब्रह्मश्री उपाधि से विभूषित आचार्य कपाली शास्त्री पाण्डिचेरी अरविंद आश्रमवासी रहे हैं । इन्होंने ऋग्वेद के १।१।१। से १।१२१ (प्रथम अष्टक) तक के अंश पर 'सिद्धाञ्जन' नामक भाष्य लिखा है । भाष्य दो भागों में विभक्त है । यह सरल एवं सुबोध है । अनेक प्राचीन उद्धरणों से यह भाष्य समलंकृत है । चार खण्डों में विभाजित इनकी पद्य-गद्यात्मक ऋग्भाष्यभूमिका अतीव सारगर्भित, विद्वद्भोग्य एवं सराहनीय है । इसमें इन्होंने अपने पिता का नाम विश्वेश्वर भारद्वाज लिखा है । इनके ऋग्भाष्य की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रत्येक के लिए कंठमणि बने, यह कामना है क्योंकि समस्त ऋषि-ऋषिकाओं का वैदिककर्म इनमें बूंद में समुद्र की भाँति समाहित है -

१. **एक एव परो देवः सूर्यात्मा परमः पुमान्** - केवल एक ही सर्वश्रेष्ठ देव है सूर्य, जो सभीका शरीर है ।

२. **एक एव परो वेदः स ऋग्वेदः पुरातनः** - केवल एक ही सर्वश्रेष्ठ वेद है ऋग्वेद, जो सबसे पुराना है ।

३. **ऋषयो मन्त्रकाव्यस्य कर्तारः कवयः स्मृताः** - ऋषि ही मन्त्र काव्य के कर्ता कवि थे।

४. **अन्तर्दर्शनसम्पन्ना ऋषयः कवयः स्मृताः** - ऋषि अन्तर्दृष्टि वाले थे, अन्तर्यामी थे । वे अपनी प्रज्ञा द्वारा सूर्यादि सभी में संक्रमित होते थे इसीलिए वे कवि थे ।

५. **येषां चक्षुष्मतां प्राचां देवाः प्रत्यक्षतां गताः**- अन्तःचक्षुओं वाले इन प्राचीन ऋषियों को सूर्यादिदेव प्रत्यक्ष थे ।

विशेष ऋग्वेदसंहिता (वैदिकजीवन भाष्ययुता), पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और हिन्दी भाषा अनुवाद, टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर व्याख्यान से युक्त प्रथममण्डल मात्र, नौ भागों में विभक्त, सम्पादक शिवनाथ आहिताग्नि एवं पं. शंकरदत्त-शास्त्री । प्रकाशक नागप्रकाशन । यह ग्रन्थ भी मेरे लिए उपादेय रहा है ।

परिशिष्ट ५

'अग्निमीळे पुरोहितम्' में प्रयुक्त मन्त्रों की हिन्दी व्याख्या

१. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥

(ऋग्वेद ४।५८।३।, ऋषि वामदेव गौतम । देवता अग्निः सूर्यः आपः वा गावःवा घृतं वा। छन्द त्रिष्टुप् ।)

आचार्य शबर स्वामी एवं आचार्य कुमारिल भट्ट ने अपने मीमांसासूत्र (१।२।४६) में प्रस्तुत ऋचा का यज्ञपरक अर्थ किया है । इसका सूर्यपरक (आदित्यपरक) अर्थ भी होता है । वैयाकरणी पतञ्जलि ने अपने 'महाभाष्य' के प्रारंभ में इस ऋचा का अर्थ व्याकरणविद्या के पक्ष में भी घटाया है । पर वास्तविकता यह कि ऋषि वामदेव गौतम ने जब इस ऋचा का सर्जन किया था तब संस्कृत व्याकरणशास्त्र अस्तित्व में ही नहीं आया था । इस ऋचा के सर्जन के सैकड़ों वर्ष बाद प्रचलित भाषा को पाणिनि जैसे वैयाकरणियों ने व्याकरण के नियमों में बाँधा और संस्कृत नाम दिया था ।

ऋषि वामदेव गौतम उच्चकोटि का कवि ऋषि है । प्रस्तुत ऋचा में साङ्गरूपक, रूपकातिशयोक्ति, श्लेष, लक्षणा-व्यञ्जना शब्द-शक्ति का सुभग समन्वय हुआ है । ऋषि वामदेव गौतम ने पार्थिव यज्ञद्वारा, सूर्यद्वारा हो रहे सृष्टि-यज्ञ की ओर भी संकेत किया है । यह एक उत्तम ध्वनिकाव्य का उदाहरण है ।

(१) **यज्ञपरक अर्थ** - चारों वेद यज्ञ के चार सींग हैं । प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न ये तीन यज्ञकाल यज्ञ के तीन पैर हैं । प्रवर्ग्य (उष्ण घी में दूध डाल कर बनाया गया यज्ञीय द्रव्य) और ब्रह्मोदन (यज्ञ के समय प्रमुख ऋत्विजों के लिए दक्षिणाग्नि पर पकाया गया भात) ये दो यज्ञ के सिर हैं । गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती ये सात छन्द यज्ञ के सात हाथ हैं । मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन ऋतुओं के बंधन से यह यज्ञ बँधा है । ऋक्, यजुष्, साम के मन्त्रों द्वारा यह यज्ञ उद्घोषित हो रहा है । ऐसा यह महान् यज्ञदेव यज्ञ के लिए मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ ।

(२) **सूर्यपरक अर्थ** - चारों दिशाएँ सूर्य के चार सींग हैं । ऋक्, यजुष्, साम ये तीन वेद सूर्य के तीन पैर हैं । रात और दिन ये सूर्य के दो सिर हैं । सात किरणें सूर्य के सात हाथ हैं । गर्मी, वर्षा, हेमन्त इन तीन ऋतुओं के बंधन से सूर्य बँधा हैं । ऋक्, यजुष्, साम के मन्त्रों द्वारा यह सूर्य उद्घोषित हो रहा है । अर्थात् सूर्य की ऊँचे स्वरों में स्तुति हो रही है । ऐसा यह महान् देव सूर्य यज्ञ के लिए मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ ।

(३) **व्याकरण शास्त्रपरक अर्थ** - व्याकरण शास्त्र के चार सींग (प्रमुख अंग) हैं - नाम, आख्यात, उपसर्ग और - निपात तीन पैर हैं - भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल । दो सिर

हैं - नित्यशब्द एवं कार्यरूप शब्द । सात हाथ हैं सातों विभक्तियाँ । तीन स्थानों से बँधा है - उर (हृदय) कण्ठ और शिर । ऐसा महान् देव व्याकरणशास्त्र हर्ष का उद्घोष करता हुआ मनुष्यों की वाणी में प्रविष्ट हुआ ।

प्रस्तुत ऋचा में 'वृषभ' पद में ही काव्य का सम्पूर्ण चमत्कार सिमट आया है । ध्वनि, व्यंजना, लक्षणा, श्लेष, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, पार्थिव-यज्ञ, सृष्टि-यज्ञ, इत्यादि के अर्थ- विस्तार का पूरा श्रेय वृषभ' पद को है । ऋग्वेद में वृषभ पद कई अर्थो में एवं कई संदर्भों में लगभग १७५ बार प्रयुक्त हुआ है । ''ऋग्वेद में 'वृषभ' पद का प्रयोग'' इस विषय पर एक स्वतंत्र शोधप्रबंध लिखा जा शकता है ।

(२) द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ शुक्ल यजुर्वेद ३६/१७)

जहाँ नक्षत्र, सूर्य, ग्रह प्रकाशित हैं वह द्यौ लोक मुझे शान्ति देनेवाला हो । जहाँ वायु व्याप्त है वह बीच का अन्तरिक्ष लोक मुझे शान्ति देनेवाला हो । पृथिवी मुझे शान्ति देनेवाली हो । जल मुझे शान्ति देने वाला हो । ओषधियाँ (अन्न) मुझे शान्ति देने वाली हों । वनस्पति मुझे शान्ति देने वाली हो । सृष्टिकारी सभी देव मुझे शान्ति देने वाले हों । सर्वव्यापक चेतन (ब्रह्म) मुझे शान्ति देने वाला हो । सभी मुझे शान्ति देने वाले हों । स्वयं शान्ति मुझे शान्ति देनेवाली हो । यह शान्ति मुझे बढ़ाए ।

यह शुक्ल यजुर्वेद का यजुष् (गद्य) मन्त्र है ।

**(३) येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥**

(ऋग्वेद १०।१२१।५।; ऋषि प्राजापत्य हिरण्यगर्भ । देवता कः (प्रजापति) छन्द त्रिष्टुप् ।)

जिसके द्वारा द्युलोक प्रकाशमान् हुआ और पृथ्वी स्थिर हुई; सूर्य तथा उसके नीचे के भाग को आधार देकर जिसने रोक रखा है, जो अन्तरिक्ष में व्याप्त तेज (विद्युत्-अग्नि) एवं जल को बनाता है, उस देव की पूजा हम हवि-द्वारा करें । हम उसे हवि-अन्न-सोम की आहुतियों से संतृप्त करें ।

**(४) हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥**

(ऋग्वेद १०।१२१।१।, ऋषि प्राजापत्य हिरण्यगर्भ । देवता कः (प्रजापति) छन्द त्रिष्टुप ।)

सबसे पहले हिरण्यमय अण्ड रूप गर्भ उत्पन्न हुआ । वह हिरण्यमय अण्ड रूप गर्भ उत्पन्न होने के साथ ही सम्पूर्ण भूतमात्र का (उत्पन्न हुए सभी का) जनक पालक एवं रक्षक

बना। यही हिरण्यगर्भ पृथ्वी को धारण कर रहा है और यही अन्तरिक्ष को भी धारण कर रहा है। ऐसे उस देव की पूजा हम हवि द्वारा करें। यास्क के 'निरुक्त' के व्याख्याता आचार्य दुर्ग के मत के अनुसार प्रकृति ही हिरण्यगर्भ है। प्रकृति से ही सृष्टि हुई है। वस्तुतः सृष्टि के आरंभ में प्रकृति हिरण्यमय थी। हिरण्य का अर्थ सुवर्ण होता है पर यहाँ दार्शनिक अर्थ है। हिरण्य यहाँ सृष्टिकारी द्रव्यमात्र का वाचक है। हिरण्यरूप सृष्टि जिसके गर्भ में है, ऐसी प्रकृति हिरण्यगर्भ हुई (वैदिक कोश, नागप्रकाशन, भाग ३)।

ऋग्वेद १०।१२१। वें सूक्त में १० ऋचाएँ हैं। प्रथम ऋचा का प्रथमपद **'हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः'** है। अतः इसे **'हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः'** सूक्त भी कहते हैं। इसकी देवता 'कः' है। करोति इति 'कः'। जो क्रमण का साधन बने या जो स्वयं क्रमण करे वह 'कः' है। प्रजापतिः अकामयत्। इस प्रकार प्रजापति को 'कः' कहा गया। प्रस्तुत सूक्त की अन्तिम ऋचा (१०) में 'प्रजापति' पद का प्रयोग हुआ है – **'प्रजाप॑ते न त्वदेतान्यन्यो'** इस ऋचा का अर्थ है –

"हे प्रजापति, सभी पदार्थों को तुमने उत्पन्न किया है और तुमने ही उन पर कृपा दृष्टि रखी है। हम जिन-जिन वस्तुओं कीं इच्छा से तुझे हवि दें, वे सभी वस्तुएँ हमें प्राप्त हों और इसी तरह तुम हमें अनेक संपादाओं के स्वामी होने दो।"

अब प्रश्न यह कि शाकल्य के 'ऋग्वेद' के पदपाठ में उपर्युक्त ऋचा नहीं है। अतः यह प्रक्षिप्त है। मेरे पास शाके १७३ की अन्नं भट्ट नामक लिपिक की एक प्राचीन ऋक्संहिता की पदपाठ की हस्तप्रति है।[१] उसमें भी यह ऋचा नहीं है। अतः 'कः' के पर्याय के रूप में प्रजापति को मानना उचित नहीं है। आचार्य वेंकटमाधव 'कः' की व्याख्या में 'तस्मै देवाय' का प्रयोग कर रहा है। अतः कः 'हिरण्यगर्भ' वाचक होना चाहिए।

---

१. देखिए आवरण पृष्ठ २ पर, हस्तप्रति का चित्र।

आशीर्वाद एवं सम्मतियाँ

१ डॉ. दशरथ ओझा
अध्यक्ष प्राच्यविद्याविभाग एवं
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

रामकिशोर रोड़, सिविललाइन्स,
दिल्ली, ११००५४.
दि. १५-२-९३

मान्यवर जोशीजी,

श्री गाड़ोदियाजी से आपके सभी समाचार प्राप्त हुए।

मैं मनोनिवेशपूर्वक वेद का अधिकांश भाग पढ़ गया। आप अपने तपोबल से जो काम कर रहे हैं, उसके लिए अन्य संस्थाओं ने करोड़ों रुपया व्यय किया है। पचासों पंडित एक साथ काम करते रहे तब वर्षों में पूरा हुआ है।

मैंने सेठजी को दो एक नई पुस्तकों का नाम बताया है। वह आपके पास भेजने वाले हैं।

वेद के अर्थ के विषय में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि ऋषिवाणी ऋचाओं को आप जैसा तपस्वी ही समझ पाएगा। कई अनुवाद मार्केट में हैं। उनसे कतिपय विशेषताएँ आप में पाई जाती हैं पर प्रचार का साधन क्या है? आपका जीवन अनुकरणीय है। ज्ञान-सागर में गोता लगाते रहिए। मेरा स्वास्थ्य सामान्य है। शीत से बच गया। ग्रीष्म की भगवान् जानें।

सादर
(दशरथ ओझा)

२- पूज्यस्वामी श्री
सच्चिदानन्दजी महाराज,

स्वामी सच्चिदानंद सेवासमाज
पो.बो. नं. १९ दंताली - ३८८४५०
पेटलाद, जि. खेड़ा (गुजरात)
फोन - ०२६९७/२२४८०
दि. २९-१-९५

परम स्नेही आदरणीय श्रीयुत् पण्डितजी महाराज !

सप्रेम हरिस्मरण।

पत्र पढ़कर आपकी तपस्या का पता चला। अभी जब कि बहुत से लोग संस्कृत को सिर्फ पेट का निमित्त बना रहे हैं तब आप एकान्त में बैठकर सच्ची साधना कर रहे हैं। लोग तो पाखण्ड को पूजते हैं। सच्चे विद्वानों की उन्हें जानकारी एवं पहचान ही नहीं होती। आप में बहुत धीरज एवं स्थिरता है। आप अवश्य ही यह महान् कार्य पूरा करें और लोगों की वेदों की सच्ची जानकारी बढावें, ऐसी परमात्मा से प्रार्थना है। अलग कवर से थोड़ी सी भेंट भेज रहा हूँ, शायद आपके कुछ काम आए। सेठजी गाड़ोदियाजी को हरिस्मरण।

(सच्चिदानंद)

३.- (स्वामी श्री सच्चिदानन्दजी महाराज का दूसरा पत्र) ॐ, १५-९-२०००

आदरणीय श्री भ्रमरलालजी,

सप्रेम हरिस्मरणम्।

आपकी पुस्तक 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' एवं पत्र मिले।

आपकी बातों से में सहमत हूँ। ऋषियों के बाद में जो भी आया, सबने इस देश और प्रजा को गुमराह किया है। किन्तु आप और मैं जो कुछ कहते हैं, उसे कौन मानेगा? लोगों का पठन - पाठन कम है। कथावार्ता करने वाले चालू प्रवाह में बहते-बहाते हैं और आजीविका और आमदनी सर्वोच्च हो गयी है! अब ऐसे में सत्य कहाँ टिकेगा? आभार

(सचिदानन्द)

३. Tel. Off. 29143 Department of Sanskit, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur, 313 001

प्रो. डॉ. हेमलता बोलिया
उदयपुर
दि. ३-२-२०००

आदरणीय डॉ. भ्रमरलाल जोशीजी,

आप द्वारा प्रेषित 'शक्ति-ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' शीर्षक की शोध पुस्तक प्राप्त हुई । उसको पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई । हिन्दी के मनीषी विद्वान् होते हुए भी सेवानिवृत्ति के बाद सन् १९९० से लेकर २००० तक वेद का जो गहन अध्ययन आपने किया है, वह स्तुत्य है । वेद न केवल शुष्क ज्ञान के प्रतीक हैं अपितु ये जागतिक आवश्यकताओं के महत्त्व के तत्त्व शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के आकर भी हैं, यह कम लोगों को ही ज्ञात है । इस शुभ कर्म द्वारा आपने समग्र समाज का ध्यान आकर्षित किया। इसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं । प्रथम बार ज्ञात हुआ कि वेद में शक्ति, ऐश्वर्य और विज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है।

आपके इस महत्त्वपूर्ण कार्य से न केवल विद्यार्थी जगत् अपितु वेद के अध्ययन-अध्यापन में संलग्न विद्वद्वर्ग भी लाभान्वित होगा ऐसी कामना करती हूँ ।

भावस्था

(डॉ. हेमलता बोलिया)
अध्यक्षा, संस्कृत विभाग,.
मोहनलाल सुखाड़िया विश्व विद्यालय, उदयपुर

उदयपुर
दि. ३-२-२०००

५.

डॉ. चि. ग. काशीकर, एम्. ए. डि. लिट्
४८९, सदाशिव पेठ, पूणे, ४११ ०३०
दूरभाष ४४७०६२३ दि. ११-७-२०००

प्रिय डॉ. भ्रमरलालजी,
नमस्कार,

'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' आपका निबन्ध मैंने पूरा पढ़ लिया । सालों तक आप ऋग्वेद का अध्ययन श्रद्धा के साथ कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप, आपका विस्तृत साहित्य सिद्ध है । उपरिनिर्दिष्ट निबन्ध उस अध्ययन का अंश मात्र है, जो प्रशंसनीय है। वेद हिंदुओं के धर्मग्रन्थ हैं, जिनके प्रति उनका आदर भाव है । कुछ लोग वेदों का, खास करके ऋग्वेद का अध्ययन श्रद्धा से करते हैं और लेखन द्वारा अपना आदर भाव प्रकट करते हैं । इसके फलस्वरूप जो साहित्य प्रकाशित होता है, उसका स्वागत है । कुछ आधुनिक वैज्ञानिक अपनी-अपनी दृष्टि से वेदों का, विशेषतः ऋग्वेद का, अध्ययन करके स्वानुकूल तात्पर्य निकालते हैं, उनकी श्रद्धा भी सराहनीय है ।

वैसे वेद को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विद्वान् देखते हैं और अपने-अपने दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। आपने अपनी दृष्टि से वेद को परखा है । वेद के प्रति आदरभाव रखनेवाले आपके अभिप्राय का आदर करेंगे।

वेदों का परस्पर संबन्ध है । किसी एक वेद का अध्ययन करते समय अन्य वेदों के प्रतिपाद्य का भी अवधान रखना आवश्यक है। अध्ययन की ऐतिहासिक रीति भी होती है । वेद की प्राचीन भाषा का युरो-भारतीय द्रविड़ आदिं भाषाओं के साथ जो संबन्ध है, उस पर ध्यान देना भी लाभदायक होता है ।

विद्यातीर्थमहेश्वर वेद की सेवा में आपका यह प्रयास प्रेरक और सहायक हो ।

मैं आपके प्रयासों का साफल्य चाहता हूँ।

आपका

चि. ग. काशीकर
(पूर्व अध्यक्ष, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना)

६. कल्याणमल लोढ़ा
भू.पू. कुलपति जोधपुर विश्वविद्यालय एवं
वरिष्ठ आचार्य कलकत्ता विश्वविद्यालय

२ए, देशप्रिय पार्क (इस्ट)
कलकत्ता - ७०० ०२९
२३-९-२०००

प्रियवर डॉ. जोशीजी,

साभिवादन निवेदन है कि मैंने आपका ग्रन्थ 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' पढ़ा। ये व्याख्यान आपने मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में दिए थे। इन व्याख्यानों से मेरा ज्ञानवर्धन हुआ है। आपने गहरी सूझ और व्यापक स्तर पर अपना महत्त्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। यह नितान्त सही है कि आज समूचा विश्व वेद-वाङ्मय की ओर आकृष्ट हो रहा है। डॉ. डेविड ने तो अपना जीवन ही वेदों के अध्ययन के लिए सर्मपित कर दिया था। वर्तमान संस्कृति एवं विनाशक भौतिकवाद की अन्धगली से बहार निकलने का एक मात्र प्रकाश पथ भारतीय विचार धारा है। मैं आपके वैदुष्य और प्रज्ञा से प्रभावित एवं प्रेरित हुआ हूँ।

मैं जोधपुर विश्वविद्यालय का कुलपति था। एवं कलकत्ता विश्वविद्यालय का वरिष्ठ आचार्य भी।

शुभेच्छाओं के साथ
आपका
[signature]
(कल्याणमल लोढ़ा)

प्रतिभाव

प्रो. डॉ. ब्रह्मर्षि के. का. शास्त्री, अहमदाबाद

'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के संस्कृत विभाग के तत्त्वावधान में प्रस्तुत व्याख्यान की प्रो. डॉ. भ्रमरलाल जोशी की पुस्तिका है। डॉ. जोशी ने दर्शन-वाचन करने के लिए देकर मेरे पर बड़ा उपकार किया है। कारण यह है कि पर्याप्त लाघव से इस व्याख्यान में इन्होंने चारों वेद, वैदिकसाहित्य, मुख्यवेद ऋग्वेद एवं भारतीय अवैदिक मत-पंथ सम्प्रदायों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके हमें सरलतापूर्वक वेद-विषयक ज्ञान सुलभ कर दिया है। इस कारण जितने धन्यवाद दूँ उतने कम हैं। वर्षों से हम साथ उठते-बैठते हैं, किन्तु इतनी गहराई से वेदों का अभ्यास करके विषय प्रस्तुत करने की मुझे कल्पना भी नहीं थी। निडरता से साम्प्रदायिक, पारम्परिक मान्यताओं के बन्धन से मुक्त होकर डॉ. जोशी ने अकाट्य अभिप्राय प्रस्तुत किए हैं, यह देखकर प्रसन्नता होती है।

तीन प्रकरणों एवं पांच परिशिष्टों में विभक्त करके डॉ. जोशी ने विषय को समझाने में पूरी आसानी कर दी है, यह इनकी अपनी विशिष्ट अर्जित कला है, अर्जित शक्ति है।

प्रथम प्रकरण चारों वेदों के गठन में क्या विशिष्टता है, यह बताता है। इस प्रकरण में मुझे जो आकर्षण हुआ वह यह कि वेदत्रयी क्या हैं? कई लोग मान रहे हैं कि ऋक्, यजुष् और अथर्व ये तीन मिलकर वेदात्रयी हैं। सामवेद तो ऋग्वेद में है ही। यह तो गाने के लिए ऋग्वेद में से छांटी गई ऋचाओं का संग्रह है। ऋक्, यजुष् और साम ये तीनों मिलकर ही वेदत्रयी हैं क्योंकि इनके मन्त्रों का ही यज्ञों में विनियोग होता है। अथर्ववेद को पीछे से वेदत्व प्रदान किया गया है। ऐसा कहने के बाद डॉ. जोशी ने यह भी स्पष्ट किया कि अथर्ववेद ऋग्वेद के जितना ही पुराना है और यह स्वतन्त्ररूप से लौकिक एवं वैज्ञानिक (Scientific) विषयों का निदर्शन करानेवाला ग्रन्थ है।

अनेक गणों के धातुओं से अनेकार्थी 'वेदः' पद पर ऋग्वेदादि के संदर्भ में डॉ. जोशी के अन्तःसाक्ष्य से सम्बद्ध विचार आदरणीय हैं ।

वेदों का विरोध उपनिषदों और गीता से शुरू हुआ, यह सत्य है, किन्तु मैं मानता हूँ कि हिंसामय एवं स्वर्गपरक यज्ञों को लेकर ही ऐसा हुआ है ।

ऋग्वेद का रसदर्शन डॉ. जोशी की अद्वितीय देन है और इसका मैं नतमस्तक हो आदर करता हूँ । ऋग्वेद का ऐसा सुचारु रसदर्शन हमारे सामने सर्वप्रथम बार आया है, जो सर्वथा आदरणीय एवं ग्राह्य है ।

वेदों की पौरुषेयता का सूचन मुझे योग्य लगता है । हमारे हृदय में साम्प्रदायिकता हो तो, हम यह मानें कि ऋषि-ऋषिकाओं के हृदय में भगवान् ने प्रेरणा की और दीर्घकाल तक उनकी परंपरा द्वारा सूक्त आते रहे और ऋषियों की पीढ़ी-दर पीढ़ी एवं शिष्य परंपरा से तादृश स्वरूप में सुरक्षित रह कर आज चार वेदों के रूप में वेद हमारे सामने हैं ।

यहाँ मैं यह कहूँ कि 'पुरुषसूक्त' (ऋग्वेद १०।९०) चातुर्वण्य प्रजा के नियम स्थापित हुए, इसके बाद की रचना है । यह पूर्णतया सत्य है । यह बाद में ऋग्वेद में मिला दिया गया खिल अंश है ।

तीसरा प्रकरण वैदिकेतर मत-पंथों का है । वैदिक युग की महत्ता तो थी ही । पृथ्वी के विशाल पट पर जब अन्यत्र कहीं भी नामोनिशान भी संस्कृतियों का नहीं था, ऐसे प्राचीनतमकाल में बृहद् भारतीय उपखण्ड में वैदिक संस्कृति विकास के उच्चतम शिखरों को लाँघ चुकी थी । हमारे ऋषि-ऋषिकाएँ इस संस्कृति के जनक, पोषक एवं वाहक थे । ऋषि-ऋषिकाओं के विचार संकुचित नहीं किन्तु व्यापक थे, उदार थे । ये विचार उपनिषद् काल में प्रवाहित होते हुए भारतीय जीवन में सहस्रों वर्षों की सुदीर्घ यात्रा करते हुए जाह्नवी की भाँति प्रकट तो सरस्वती की भाँति अन्तर्लीन हो आज तक एवं आज के भी बाद यावच्चन्द्रदिवाकरौ भारतीय जीवन को अभिषिक्त करते रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ।

बौद्धमत एवं जैनमत भारतीय प्रणाली के परमतत्त्व को नहीं माननेवाले मार्ग हैं, पर इनके मूल में भी प्राचीन भारतीय संस्कृति के ही बीज फलित हो रहे हैं ।

तृतीय प्रकरण सारा ही बहुमूल्य है । डॉ. जोशी ने पौराणिक कोटि के ग्रन्थों में निरूपित कथाएँ प्रायः काल्पनिक हैं, ऐसा बताया है । मैं भी यही मानता हूँ कि हमारे पौराणिक (Mythical) ग्रन्थ उपन्यास ही हैं, पर इनके मूल में इतिहास के भी बीज पड़े हैं। इस पर भी विचार करना जरूरी है। ऋग्वेद में वर्णित इक्ष्वाकु (१०।६०।४) एवं पुरुवा (१०।९५) पुराणकाल में क्रमशः सूर्य एवं चद्रवंश के आदिपुरुष माने गए हैं। ये ऐतिहासिक ही हैं । (वैदिक इण्डेक्स मैकडौनेल और कीथ, ५.८४ भाग १.५.३ भाग २)

महाभारत का स्रोत ऐतिहासिक है । महाकाव्य होने के कारण इसमे बहुत-सी कथाएँ कल्पित हैं । श्रीकृष्ण के बालस्वरूप के चरित्र-निरूपण में कल्पना की संभावना है ।

प्रस्तुत पुस्तिका में भारतीय सम्प्रदायों का निरूपण संक्षेप में किया गया है, फिरभी जितना आवश्यक है, उतना अवश्य कहा गया है ।

'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' पुस्तक भारतीय भाषाओं में एवं विदेशी भाषाओं में अनूदित की

जाए तो अनेक जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक यथार्थरूप में मार्गदर्शक बन जाए, ऐसी मेरी भावना है।

डॉ. जोशी को जितने धन्यवाद दूँ उतने कम हैं ।

दि. ९-११-२०००
मधुवन, एलिसब्रिज,
अहमदाबाद-३८० ००६
दूरभाष - ०७९-६४४१९१०

केशवराम का शास्त्री

के. का. शास्त्री
(महामहिमोपाध्याय, विद्यावाचस्पति,
पद्मभूषण, ब्रह्मर्षि प्रो. डॉ. केशवराम काशीराम शास्त्री।)

शुभेच्छा

प्रो. डॉ. एस्तेर सोलोमन, अहमदाबाद

डॉ. भ्रमरलाल जोशी ने ऋग्वेद का अध्ययन और समीक्षात्मक विवेचन निष्ठापूर्वक किया है। इन्होंने ऋग्वेद के भाष्य, अनुवाद, कोश, निरुक्त की टीकाएँ और वेदों से सम्बद्ध जितने संदर्भ ग्रन्थ मिल सके उन सभी का संग्रह किया है और ध्यान देकर उपयोग भी किया है। वेदों को सरल भाषा में साधारण जन के लिए समझने योग्य बनाया जाए, ऐसा इनका संकल्प सिद्ध हो, ऐसी हार्दिक शुभेच्छा ।

जोशीजी की दृढ़ प्रतीति है कि वेद शक्ति, ऐश्वर्य और विज्ञान के स्रोत हैं और पूर्ण श्रद्धा से विशेषतः ऋग्वेद के सूक्तों का प्रमाण देकर इन्होंने यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। **ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का रस-दर्शन करते-कराते समय तो जोशीजी खुद कवि बन गए हैं। ऋषि भी यह देखें तो प्रसन्न हो जाएं।**

डॉ. जोशी ने अपना समीक्षात्मक अध्ययन तीन विभागों में प्रस्तुत किया है - वेद, ऋग्वेद का रस-दर्शन और वैदिकेतर एवं वेदविरोधी मत-पंथ। पहले दो विभाग तो निःशंक प्रशंसनीय हैं। डॉ. जोशी ने इनमें वैदिककाल का भव्य चित्रण प्रस्तुत किया है। बलार्जन, विजिगीषा, दीर्घजीवन, रसोपभोग, देवस्तवन एवं यज्ञ ये ही थे ध्येय इस (वैदिक) काल के। इसी जीवन को शोभन कर्मों द्वारा सँवारना यही था कर्तव्य। (पृ.३७) इससे विपरीत वैदिकयुग के अन्तिम चरण में उपनिषद् जो ज्ञान, वैराग्य, संन्यास, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल एवं मोक्ष के विचार लेकर आए, इस हकीकत पर इन्हें खेद है और जोशीजी मानते हैं कि वैदिक युग के बाद वैदिकेतर जितने भी दार्शनिक संप्रदाय, धर्म, मत-पंथ अस्तित्व में आए, उन सभी पर उपनिषदों का प्रभाव है और इस कारण से भारतीय प्रजा निर्वीय हो गई है और दीर्घकालीन दासत्व भोगना पड़ा है। जोशीजी को वैदिक युग के उत्तरकाल में जो मत-पंथ अस्तित्व में आए उनके प्रति और विशेषतः पुराणप्रतिपादित भक्तिमार्ग के प्रति काफी तिरस्कार है ।

मुझे लगता है कि इस विषय में स्वस्थता और गंभीरतापूर्वक विचार आवश्यक है ।

मेरा मन्तव्य है कि दर्शनों और पुराणों के उपदेश के कारण भारत सब तरह से कमजोर बना है, ऐसा मानना ठीक नहीं है। नितान्त योगी, संन्यासी प्रकार के लोग कितने ? और उन्होंने भी सबको त्यागी, संन्यासी बनने का कभी दुराग्रह नहीं किया। व्यवस्थित गृहस्थाश्रम को खूब ज्यादा महत्त्व सदा दिया गया है, कारण यह कि संसार का यही आधार स्तंभ है। इन ग्रन्थों ने और सच्चे आचार्यों ने कुछ सिखवाया है तो स्वस्थता, दृढ मनोबल, नीतिमत्ता आदि बनाए रखने का रास्ता बताया है। जो कमजोरी दासत्व की तुच्छता, भ्रष्टाचार, एकता का अभाव आदि दूषण हैं ये भोगविलास और आलस्यपूर्ण वैभव की अयोग्य तृष्णा के कारण हैं। सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, आदि को स्वीकार करने से तो संसार मधुर ही बन जाए। दूसरा, भारत में (जैसे जगत् में अन्यत्र भी) छोटे-छोटे-राज्य थे। जिनमें परस्पर मित्रता, संघबल और सद्भाव का अभाव था। इतना ही नहीं जब

परदेशी दुश्मन का आक्रमण होता तो एक राज्य दूसरे अपने पड़ोशी राज्य को पराजित करवाने के लिए परदेशी आक्रमक को सहायता देता और अन्त में खुद भी अपने कर्म से गुलाम बन जाता। ऐसी मनोदशा को मिटाना बहुत कठिन है क्योंकि स्वार्थ हो, वहाँ उच्च भावना टिकती नहीं है।

आज भारत एक है। आशा रखें कि प्राचीन ऋषि-आचार्यों का प्रभाव अद्यतन विद्याओं के कारण पर्याप्त बलशाली, स्वमानी और सभी के प्रति सद्भाव रखनेवाला बनेगा ही।

अन्त में पुनः डॉ. जोशी के वैदिक कार्य के प्रति अपनी हार्दिक शुभेच्छा व्यक्त करती हूँ।

७-१२-२०००
३७२, १८ लेन,
सत्याग्रह छावणी,
सेटेलाइट रोड़
अहमदाबाद-३८० ०१५
दूरभाष- (०७९) ६७६६९८४

एस्तेर सोलोमन

प्रो. डॉ. एस्तेर सोलोमन
(पद्मश्री पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद-९)

लेखक के प्रकाशित ग्रन्थ

(१) **सूरदास और नरसिंह महेता : तुलनात्मक अध्ययन**, शोधप्रबंध, प्रकाशक-गुर्जर भारती, अहमदाबाद, सन् १९६८ मूल्य ३०/- अप्राप्य।

(२) **हिन्दी कृष्णकाव्य में भक्ति एवं वेदान्त** : शोधप्रबंध-डॉ. सन्तोष पाराशर, संशोधक, परिवर्द्धक एवं संपादक डॉ. भ्रमरलाल जोशी, प्रकाशक-गुर्जर भारती अहमदाबाद, सन् १९८६, मूल्य ४००/- अप्राप्य।

(३) **वाञ्छाकल्पलता** (श्री विद्या, तन्त्रग्रन्थ) मूल एवं हिन्दी भूमिका, प्रकाशक-श्रीविद्या फाउन्डेशन. अहमदाबाद, सन् १९९६।

(४) **शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद** : प्रकाशक-गुर्जर भारती, अहमदाबाद, सन् २००० मूल्य १००.००

अप्रकाशित ग्रन्थ

(१) ऋग्वेद (मूल, हिन्दी में सूक्त-समीक्षा एवं मन्त्रार्थ)

(२) वैदिककोश (निघण्टु पर देवराजयज्वकृत टीका, निरुक्त की उपलब्ध टीकाओं तथा ऋग्वेद में प्रयुक्त पदों के आधार पर)

आगामी लेखन एवं प्रकाशन-योजना

(१) ऋग्वेद (मूल, मण्डल-परिचय, ऋषि-ऋषिका परिचय, सूक्त-समीक्षा एवं मन्त्रार्थ के क्रम से हिन्दी में)

(२) **ऋग्वेद के ऋषि एवं ऋषिकाएँ** - ऋग्वेद में लगभग ५०० से भी अधिक ऋषि एवं ३० ऋषिकाएँ हैं। मन्त्रों में इन्होंने अपने जीवन के सुख-दुःख का वर्णन किया है। अतः इनके कृतित्व के आधार पर इनके व्यक्तित्व का निरूपण।

(३) **ऋग्वेद में सृष्टिविज्ञान** - ऋषि-ऋषिकाएँ जहाँ प्राकृतिक देवों का वर्णन करते हैं, वहाँ वे उनके गुण, कर्म, भावों, धर्मों का भी निरूपण करते हैं। अतः मन्त्रों के आधार पर ऋग्वेद में वर्णित सृष्टिविज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण।

(४) **ऋग्वेद की देवताएँ** - ऋग्वेद में लगभग ५३६ देवताओं का वर्णन है। देवता अर्थात् ऋषियों द्वारा वर्णित विषय। सृष्टि, प्रकृति, जीवन, मानवजीवन के गुण, कर्म भाव इत्यादि विषयक देवता ऋग्वेद में वर्णित हैं। इन सभी का वैज्ञानिक विश्लेषण।

(५) **ऋग्वेदकालीन समाज**। (६) **ऋग्वेद एक बृहद् कविता-संग्रह**।

(७) **ऋग्वेद एक काव्यपुरुष** (८) **यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद को ऋग्वेद का प्रदान**।

(९) **ऋग्वेद की वीर्यवत्तर धर्मसाधना तथा इसकी उपेक्षा के दुष्परिणाम**। इत्यादि...

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY ROHTAK

डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा
एम्.ए., पी-एच्.डी. (संस्कृत)
एम्.ए.,पी-एच्.डी.; डी. लिट् (हिन्दी)
सेवा-सम्पन्न प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
हिन्दी तथा ललितकला विभाग,
डीन, भाषा-संकाय,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
सदस्य, साहित्य अकादमी, दिल्ली

॥ त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥[१]

आदरणीय बन्धुवर डॉ. जोशी जी,

सप्रेम नमस्कार ।

आपकी पुस्तक 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' पढ़कर विशेष लाभान्वित हुआ । पुस्तक तत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित है तथा 'गागर में सागर'की उक्ति को चरितार्थ करती है । आपकी साधना स्तुत्य, अभिनन्दनीय एवं प्रणम्य है । आपकी मान्यताएँ मौलिक एवं प्रमाण-पुष्ट हैं । 'वेद' के अर्थ के सम्बन्ध में आपकी स्थापना (वेदःधननाम) सर्वथा प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है । वेद प्रवृत्ति का सन्देश देते हैं, संन्यास या वैराग्य का नहीं । वेद अन्तःस्फूर्त ऋषियों और ऋषिकाओं के अनुभूतिप्रवण हृदयों से प्रसूत पावन एवं उदात्त रचानाओं से युक्त उत्तम काव्य-ग्रन्थ हैं । अतः पौरुषेय हैं, अपौरुषेय नहीं । आपकी यह मान्यता भी साधार एवं सटीक है । वेद-मन्त्र कविता के रूप में प्रस्फुटित हुए थे, यज्ञ-विधान में विनियोग के लिए नहीं - यह धारणा भी सर्वथा अवधेय है । ऋषि-शौर्य-प्रेमी कवि हैं । अतः वेद शौर्य-निरूपक शक्ति-काव्य हैं । आपका यह कथन सर्वथा समीचीन है कि 'ऋग्वेद' शौर्य एवं शृंगार से विभूषित एक काव्य पुरुष है । यह वीरों और वीरांगनाओं के शौर्य-चित्रों की चारु चित्रशाला है । भुवन-मोहिनी उषा के अपरिसीम सौन्दर्य के सम्मोहनकारी चित्रों के निरूपण में तो आप स्वयं एक सौन्दर्य-चितेरे ऋषि के रूप में दिखलायी पड़ते हैं और आपकी प्रवाहमयी बिम्बधर्मी भाषा ने काव्य-भाषा का सर्जनात्मक स्तर अर्जित कर लिया है । आप प्रबुद्ध विश्लेषक भी हैं और संवेदनशील संश्लेषक भी । भावना, कल्पना और चिन्तना का आपके व्यक्तित्व में समन्वित उत्कर्ष घटित हुआ है । आपकी विषय में गूढ़ पैठ है । आपने कई भ्रान्तियों को सफलतापूर्वक निरस्त किया है । वेदव्यास निश्चय ही एक परिकल्पित व्यक्तित्व है । वेद-विरोधी मतों का आपने सतर्क खण्डन किया है । वेदों के प्रेरक, ऊर्जामय, मंगलकारी, सात्त्विक स्वरूप के तथ्यात्मक एवं तर्कसम्मत उद्‌घाटन में आपकी भारतीय समाज और संस्कृति के समुत्थान की बलवती, पावन प्रेरणा अनुस्यूत है । देश में मानसिक दासता की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रवृत्ति के सम्बन्ध में आपकी पीड़ा आपकी देश-भक्ति की द्योतक है ।

भाषा पर आपका असाधारण अधिकार है । विषय के अनुरूप कहीं आपकी भाषा सूक्तिमयी और सूत्रात्मक है, कहीं पारिभाषिक, कहीं विश्लेषणपरक और कही कवित्वपूर्ण । समूची पुस्तक वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में मौलिक एवं मननीय, बहुमूल्य, प्रेरक सामग्री से परिपूर्ण है । इस पावन प्रयास की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है ।

हरिश्चन्द्र वर्मा

१. हे इन्द्र, हमारा यह स्तोत्र तुम्हारी अभिवृद्धि करे । ऋग्वेद १/५/८/ देवता इन्द्र, ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ।

॥ विभूतिरस्तु सुनृता ॥[१]

राष्ट्रपति-सम्मानित
देवर्षि कलानाथ शास्त्री
भूतपूर्व अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी, राजस्थान
एवं निदेशक, संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
प्रधान सम्पादक - ''भारती'' संस्कृत मासिक

फोन : (०१४१) ३७६००८
अध्यक्ष, मंजुनाथ स्मृति संस्थान
-८, पृथ्वीराजरोड़, जयपुर-३०२ ००१

२०-०५-०१

विद्वत्प्रवर जोशीजी,

सविनय नमः ।

आपको मेरा पूर्वपत्र मिला होगा । अभी मुझे श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट जी के माध्यम से ''शक्ति ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद'' पुस्तक मिली है । मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर की व्याख्यान माला पर आधारित इस ग्रन्थ में आपने समस्त वेदवाङ्मय की अनुशीलन-परम्परा पर जो व्यापक समीक्षात्मक दृष्टिपात किया है, उसमें अनेक नवीन दृष्टिभंगियाँ हैं जो पूर्णतः ''प्रत्यायक'', तथ्यात्मक और मननीय हैं, जो इतिहास दृष्टि है वह श्लाघनीय है, जो विमर्शात्मक अभिगम है वह अनुसरणीय है । इसे लगभग पूरा पढ़ गया हूँ किन्तु पुनः कुछ स्थलों को गहराई से पढ़ने की इच्छा हो रही है ।

प्रसङ्गवश आपने जो पर्यवेक्षण वेद की अन्ध परम्परा के कारण उपजे अन्धविश्वासों पर किया है (जैसे अर्थज्ञान के बिना केवल मंत्ररटन को महिमामंडित करना) उससे मैं पूर्णतः सहमत हूँ । स्वयं भी इस प्रकार का अभिमत व्यक्त कर कभी-कभी अन्धश्रद्धालुओं के आक्रोश का पात्र भी बना हूँ । वेदव्यास की अवधारणा पर आपकी स्थापना से भी मैं सहमत हूँ ।

वैदिकेतर संप्रदायों पर आपका विवेचन तलस्पर्शी और वस्तुनिष्ठ है । भारतीय वाङ्मय, हिन्दी साहित्य तथा इतिहास की मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में आपने जो पर्यवेक्षण किये हैं वह आप जैसा बहुश्रुत तथा आधुनिक भारतीय वाङ्मय का अध्येता ही कर सकता है । व्याख्यान-माला के बहाने एक बहुमूल्य विमर्शात्मक वेद मीमांसा ग्रन्थ अवतीर्ण हो गया, इसके लिए 'मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय', उदयपुर बधाई का पात्र है । मुझे पुस्तक के परिशिष्ट अत्यन्त उपयोगी लगे । नामानुक्रमणिका से किसी भी ग्रन्थ की संग्रहणीयता कितनी बढ़ जाती है, यह आज के युग के 'व्यस्त' अध्येता भलीभाँति अनुभव करते होंगे ।

व्याख्यान की सुविधा और प्रकृति के लिहाज से आपने तीर्थों पर, पंथों पर टिप्पणी करते हुए 'भवाई'का जो रूपक दिया है तथा पाखंड, आडम्बर और कठमुल्लापन पर जो प्रहार किया है, वह भी पूर्णतः सटीक है ।

सर्वाधिक महत्त्व तो वेदों पर जो शोधात्मक जानकारी आपने संचित की है, उसका है । यह आपकी गहन अध्ययन-साधना की परिणति है । मैं यहाँ के वेद मनीषियों में तो इसकी चर्चा करूँगा ही, संभव हुआ तो संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में भी इसका उल्लेख करूँगा ।

श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा 'नवीन' ने आपके बारे में जानकारी दी थी, उससे भी बढ़कर आपकी मीमांसा दृष्टि इस ग्रन्थ में प्रतिफलित लगी । इसके लिए तो बधाई प्रेषित करता ही हूँ, यहाँ की संस्कृत अकादमी को भी सूचित करूँगा । आजकल उसके अध्यक्ष डॉ. हरिराम आचार्य हैं, अभी बने हैं । आपके परिचित होंगे । भारत सरकार के शब्दावली आयोग की बैठक में भाग लेने हेतु आज दिल्ली जा रहा हूँ । लौटने पर पत्र लिखूँगा ।

कलानाथ शास्त्री

१. हे इन्द्र, तेरी यह मधुर स्तुति ऐश्वर्यवती हो, वाक्सिद्धरूपा हो । ऋग्वेद १/३०/५/ देवता इन्द्र, ऋषि आजीगर्ति शुनः शेष ।

राजेन्द्र शंकर भट्ट
भूतपूर्व अध्यक्ष
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

फोन : (0141) 618899
तार : PASHAN
फैक्स : (0141) 365232, 363584
ई-मेल : stonetec@jp i.dot.net.in
'स्फटिक', 3, जयाचार्य मार्ग
राम निवास बाग
जयपुर-302 004. राजस्थान

दि. : 1-4-2001

॥ य॒ज्ञं द॑धे॒ सर॑स्वती ॥[१]

परम आदरणीय पंडितजी भ्रमरलालजी जोशी,

'शक्ति ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' से मैं चमत्कृत हुआ । वेदों को सही रूप में सामने लाना इस समय का बड़ा काम है । हम हज़ार साल भटके और पिटे हैं और विगत पचास वर्षों में बचाव के यत्न दिशाहीन रहे हैं, उस देश में जहाँ वेदों का महान् प्रकाश उपलब्ध है । परन्तु स्वार्थ ही नहीं, विज्ञान-ज्ञान भी अनेकानेक रूपों में वेदों ने प्रस्तुत किया है । वेदों को सही रूप में स्थापित करने के लिए शक्ति तथा साहस दोनों की आवश्यकता होती है । आपके आलेख आश्वस्त करते हैं । आपकी मंगलकामना मेरे मन में है ।

आपकी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ ही नहीं, प्रत्येक शब्द को मैंने ध्यान से पढ़ा है । चमत्कार अनेक हैं, जिनसे मैं आलोकित हुआ हूँ । जैसे-''वेदों के लिए 'ज्ञान' एकदम पराया है ।'' '''ऋग्वेद'का उद्देश्य कर्मकाण्ड नहीं काव्य है ।'' '''ऋग्वेद' शौर्य और शृङ्गार से विभूषित काव्यपुरुष है । ये ही क्रमशः बल एवं काम हैं।'' आदि । सभी यहाँ गिनाये नहीं जा सकते, उदाहरण मात्र यह बताने के लिए कि मैं कितना अभिभूत हूँ ।

वेदों में जो आया है, उसे लेकर सत्य यही लगता है कि जिनकी आवश्यकता होती है, वे पदार्थ अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं । कामना और प्रार्थना यह की जानी चाहिए कि इस काल के लिए जिसकी आवश्यकता हो, वेदों का वही स्वरूप प्रकट हो । प्रकृति स्वयंभू है तो भारत भी स्वयंभू है । शिशु है तो मां भी आएगी ही ।

जयपुर-छोटी काशी माना जाता है । बड़ी संख्या में यहाँ विद्वान् हैं । राज्य का प्राचीन संस्कृत महाविद्यालय है । केन्द्र की ओर से संचालित संस्कृत विद्यापीठ है, संस्कृत अकादमी है, संस्कृत के शिक्षण शोध संस्थान हैं । इनसे सम्पर्क से भविष्य् का मार्ग प्रशस्त होगा ।

मैंने तो एकबार कहा था, वेदों को कम्प्यूटर में रख दें । समस्या आए, उत्तर उससे प्राप्त करो । बड़ा वास्तविक अनुभव वेदों में है । उनका उत्तर उचित लगे तो अंगीकार करो । जो निधि हमारे पास है, उसका उपयोग नहीं करना, उचित नहीं ।

वेद अपौरुषेय नहीं हो सकते । आपने इस मत का समर्थन किया है । यह उचित है । मैं भी सार्वजनिक रूप से यही कहता रहता हूँ ।

आप उपनिषदों का विरोध लेकर आए हैं, मैं इसका स्वागत करता हूँ ।

आपने अपने नाम को सार्थक किया है । तब तक आप मानवता की पुष्पावलि पर गूंजते रहें जब तक कि आपको उसका उत्तमोत्तम रस प्राप्त न हो जाए । फिर इस रस से विज्ञ समुदाय को आप्लावित करने का आपने संकल्प किया है ।
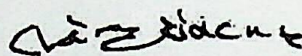
१. 'हे सरस्वती, तू हमारे इस वाग्-यज्ञ को धारण कर ।' ऋग्वेद १/३/११/, देवता सरस्वती, ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र

प्रेमी और रसिक का पर्याय भी आपने अपने नाम में पाया है और ऋषि-ऋषिकाओं का यह पक्ष भी इतना उद्घाटित हाल में किसी और के द्वारा नहीं हुआ है । आप मेरा अभिनन्दन स्वीकार करें ।

आपने कहा है कि ऋग्वेद को तो लेकर जितना कहा गया है वह 'मेरी अपनी आँखों देखी है । यही इसका मूल्य और महत्त्व है । इसीको मैं नमस्कार करता हूँ ।

वेदों ने आपको जो गति, मति और शक्ति दी है वह स्तुत्य है । मेरा प्रणाम है ।

आपका

(राजेन्द्र शंकर भट्ट)

॥ शुभम् ॥

पूर्व निदेशक, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
भाषाभवन एवं हिन्दी-विभाग
गुजरात-विश्वविद्यालय
अहमदाबाद-380 009

अध्यक्ष
हिन्दी साहित्य अकादमी
गुजरात राज्य
दि. : 8-06-01
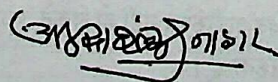
॥ पावका नः सरस्वती ॥[१]

प्रिय डॉ. भ्रमरलालजी जोशी,

वेद पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में दिये गए आपके भाषण का मोनोग्राफ[२] सधन्यवाद प्राप्त हुआ । मैं आद्योपान्त पढ़ गया । आपका अध्ययन और अध्यवसाय प्रशंसनीय है । चार सींग, तीन पगवाले वृषभ के यज्ञ, सूर्य, व्याकरणपरक अर्थ दे कर आपने वेदमन्त्रों के अर्थ को सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर दिया है । आप ज्ञान की आराधना में रत रहें । स्वस्थ और प्रसन्न रहें ।

शुभास्ते पन्थानः सन्तु

'शिवम्' -326 सरस्वतीनगर
अहमदाबाद-380 015
दूरभाष : 6743681

१. मध्यमस्थाना, अन्तरिक्ष-अधिष्ठात्री, विद्युद्रूपा, वज्रवती, विश्ववाग्जननी रसवती सरससवती सरस्वती (मेघ-गर्जना) हमारे यज्ञ के लिए घृतवान् रस (जल) बरसाए ।
ऋग्वेद १/३/१०/ऋषि मधुच्छन्दा वैश्वामित्र देवता सरस्वती । छन्द गायत्री ।

२. मोनोग्राफ (MONOGRAPH) विद्वत्तापूर्ण विस्तृत लेख ।

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

साहित्यमहोपाध्याय डॉ. भ्रमरलाल मोहनलाल जोशी (पालीवाल)

जन्म : २५ जून, १९३०, गांव पिपलांत्री, जि. राजसमंद, उदयपुर, मेवाड़ (राजस्थान) १॥ वर्ष की उम्र में मां दोली देवी का अवसान, पिताजी आजीवन (१५ वर्ष की उम्र से ९० वर्ष की उम्र तक) मेवाड़ राजवंश की सेवा में रहे 'निजखर्च' विभाग में कोथलीवाला के पद पर। पितामह पं. जगन्नाथजी जोशी, ताऊजी पं. नन्दकिशोरजी ज्योतिषी एवं तान्त्रिक; पितामह के चचेरे भाई वकतरामजी डिंगल के आशुकवि एवं महाराणा फतहसिंह (मेवाड़) द्वारा पुरस्कृत, अन्य चचेरे भाई के दो पुत्र (१) पं. उमाशंकर द्विवेदी, राजस्थान के व्रजभाषा के सुप्रसिद्ध कवि एवं बहुश्रुत विद्वान्, (२) वीर हरिशंकर द्विवेदी, मेवाड़ शासन में अश्वदल के एक प्रमुख नेता, संघर्ष में सरदार शक्तावतजी पर आक्रमण, मृत्युदण्ड, मृत्युदण्ड की ५ वर्ष की अवधि तक भूगर्भ में, पुनः महाराणा फतहसिंह के सामने उपस्थित, महाराणा द्वारा सम्मानित । महाराणा प्रताप के मुगल अकबर के साथ हुए हल्दीघाटी के युद्ध में पूर्वज नंगाजी ने वीर गति पाई, बल्ला सरदारों के नेतृत्व में ।

शिक्षा : प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में, संस्कृत प्रथमा, मध्यमा, साहित्यशास्त्री, गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज (अधुना सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) बनारस से, पं. मार्कण्डेय मिश्र के 'महाराणा संस्कृत कॉलेज' उदयपुर के छात्र रह कर तथा ७ से २१ वर्ष तक की आयु में छात्रावास (आश्रम) में रह कर। बर्मी संन्यासी केवलानन्दजी की प्रेरणा से अंग्रेजी पढ़ने की प्रेरणा, मेट्रिक, राजपुताना विश्वविद्यालय, जयपुर से।

स्थलान्तर : १९५३ में मेवाड़ से अहमदाबाद (गुजरात), बी.ए. और एम.ए. (हिन्दी ,संस्कृत,) गुजरात विश्व विद्यालय, अहमदाबाद, पी-एच्.डी. महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ विश्व विद्यालय, बडौदा।

पद एवं सेवाएँ : व्याख्याता एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग श्री स्वामिनारायण आर्ट्स कॉलेज अहमदाबाद १९६१ से १९०० तक। विजिटिंग प्रोफेसर हिन्दी अनुस्नातक केन्द्र भाषाभवन एवं एल्. डी. आर्ट्स कॉलेज, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद-९, १९६६ से अध्यावधि तक शोध निदेशक, गुजरात विश्वविद्यालय, कई शोधार्थी पीएच्.डी. कर चुके हैं तथा कई शोधरत हैं।

सम्मान : 'सूरदास और नरसिंह महेता : तुलनात्मक अध्ययन', पीएच्.डी. शोध प्रबन्ध पर पुरस्कृत, हिजहाइनेस महाराणा श्रीमान् भगवतसिंहजी बहादुर मेवाड़ द्वारा। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति संकल्पनिष्ठा, सृजनशक्ति, संशोधनदृष्टि एवं साहित्य की दीर्घकालीन सेवा की प्रतिष्ठा तथा सम्मान हेतु 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' प्रयाग द्वारा द्वारका (गुजरात) के सम्मेलन (१९९०) में साहित्यमहोपाध्याय की उपाधि से समलंकृत ।

लेखन : (१) सूरदास और नरसिंह महेता : तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशित ई.सन् १९६९, प्रकाशक-गुर्जर भारती, ३१ प्रशान्त पार्क, पालड़ी, अहमदाबाद-७। (२) हिन्दी कृष्ण-काव्य में भक्ति एवं वेदान्त - संशोधन, परिवर्द्धन एवं संपादन, प्रकाशित ई.सन् १९८६, गुर्जर भारती (हिन्दी कृष्ण-काव्य में वेदान्त, पीएच्.डी. शोधप्रबंध, लेखिका आचार्या डॉ. सन्तोष पाराशर, इसीमें भक्ति और जोड़कर संशोधन, परिवर्द्धन एवं संपादन)। (३) वाञ्छाकल्पलता (तन्त्र ग्रन्थ) प्रकाशित ई.सन् १९९६ प्रकाशक श्रीविद्या फाउन्डेशन, अहमदाबाद-७। (४) 'शक्ति, ऐश्वर्य एवं विज्ञान के स्रोत वेद' (चारों वेद, वैदिक साहित्य, मुख्य वेद 'ऋग्वेद'का रसदर्शन एवं वैदिकेतर धर्मों का वैज्ञानिक विश्लेषण। प्रकाशित ई.सन् २०००, एवं द्वितीय परिवर्धित संशोधित संस्करण २००१, प्रकाशक-गुर्जर भारती, अहमदाबाद-७। (५) ऋग्वेद (मूल एवं सूक्त समीक्षा के साथ हिन्दी अनुवाद) अप्रकाशित। (६) वैदिककोश (निघण्टु पर देवराजयज्वकृत टीका, निरुक्त की उपलब्ध टीकाओं तथा ऋग्वेद में प्रयुक्त पदों के आधार पर) अप्रकाशित।

सम्प्रति : विजिटिंग प्रोफेसर गुजरात विश्वविद्यालय अनुस्नातक केन्द्र, एल्. डी. आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद-९ 'ऋग्वेद' को और भी सुबोध बनाने के हेतु मण्डल परिचय, ऋषि-ऋषिका परिचय, सूक्तसमीक्षा एवं मन्त्रार्थ के क्रम से पुनः लेखन में संलग्न। आजीवन वेदों से संलग्न रहने की ही कामना।

स्थायी निवास : ३१, प्रशान्तपार्क, पालड़ी, अहमदाबाद-३८० ००७

दूरभाष : ०७९-६६०४१५४

॥ शुभम् ॥

॥ नमः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः ॥

IN THE PRESENT STATE OF PHILOLOGICAL, HISTORICAL, AND PHILOSOPHICAL RESEARCH, NO LITERARY WORK WAS OF GREATER IMPORTANCE AND INTEREST THE PHILOLOGER, THE HISTORIAN, AND PHILOSOPHER, THEN THE VEDA, THE OLDEST LITERARY MONUMENT OF THE INDO - EUROPEAN WORLD.

FREDERICH MAX MULLAR
PREFACE, TO THE FIRST VOLUME OF
THE FIRST EDITION OF THE RIG-VEDA-SAMHITA.
COMMENTARY OF SAYANACHARYA
OXFORD, OCTOBER 1849.

[वर्तमान भाषाविज्ञान, इतिहास एवं दर्शनशास्त्र के संशोधन के क्षेत्र में किसी भी भाषावैज्ञानिक , इतिहासकार एवं दर्शनशास्त्री के लिए भारत-यूरोपीय क्षेत्र (परिवार) की प्राचीनतम धरोहर वेद के अतिरिक्त अन्य कोई भी मूल्यवान् नहीं है ।] फ्रेडरिक मेक्समूलर । ऋग्वेदसंहिता, सायणाचार्य भाष्य भूमिका, प्रथमभाग, प्रथम आवृत्ति, ओक्सफोर्ड, अक्टोबर - १८४९

(अ) "ऋग्वेद के मन्त्रों का पक्षपातरहित अध्ययन हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि भारतवर्ष में धर्म ने इस वीर्यवत्तर मार्ग का अनुसरण नहीं किया ।"

(आ) "हिन्दू-धर्म का पौराणिकयुग लोकप्रिय सम्प्रदाय की दृष्टि से एक ह्रास (पतन) का युग कहा जा सकता है ।"

(इ) पौराणिक धर्म; जिसमें विकृतियाँ समावेश कर गई हैं । भारतीयोंकी यह धारणा है कि यह वैदिक कर्मकाण्ड तथा वैदिक दर्शन के अननुकूल है । यह निश्चय ही पुनरुद्धार का लक्षण है । इसके लिए सुगम एवं सहज उपाय यह कि विद्वान् सर्वप्राचीन एवं पुनीत भाषा (वेद) के वास्तविक रूप से जनसामान्य को अवगत करें और उनको वेदों के अध्ययन की ओर पुनः प्रवृत्त करें ताकि प्रचलित (पौराणिकी) भ्रान्तियाँ दूर हों ।

(पं. थ्योडोर गोल्ड स्टूकर, हिन्दुओंकी प्रबुद्ध रचनाएँ - पृ. १९(अ), १४५(आ) १४७(इ)

"ऋषियों के बाद जो भी आया सबने देश और प्रजा को गुमराह किया है ।"

स्वामी सच्चिदानंदजी महाराज, पेटलाद (गुजरात)

"आज समूचा विश्व वेदवाङ्मय की ओर आकृष्ट हो रहा है ।" डॉ. प्रो. कल्याणमल लोढा, पूर्व कुलपति जोधपुर विश्वविद्यालय एवं वर्तमान में वरिष्ठ आचार्य कलकत्ता विश्वविद्यालय ।

"पहली बार ज्ञात हुआ कि वेदों में शक्ति, एश्वर्य और विज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है ।"

डॉ. हेमलता बोलिया, अध्यक्षा संस्कृत विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

"आज संयुक्तराष्ट्र की शान्ति समितियों में मङ्गलाचरण में यजुर्वेद का "द्यौः शान्तिः..." शान्तिमन्त्र पढ़ा जाता है ।"

डॉ. प्रो. जयकुमार मुद्गल, डाइरेक्टर,
वैदिक विज्ञान अनुसन्धान संस्थानम्, बृन्दावन ।

यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः (तै. ३।९।५।५) जो कुछ हो रहा है ब्रह्माण्ड में, भुवनत्रय में उसकी नाभि है यज्ञ। नाभि अर्थात् पदार्थों को मिलाकर, जोड़कर रूप-आकार देनेवाली -

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ऋग्वेद १।१६४।४०। ऋषि दीर्घतमा औचथ्य एवं १०।९०।१६। ऋषि नारायण (पुरुषसूक्त)

॥ शुभम् ॥

साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि. अमदावाद-२२